Digitized by Arya Samaj Foundation

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

130976

130976

130976

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोध भारती

[हिंदी भाषा-साहित्य और शोध की त्रैमासिक पत्रिका]

अंक : 8-9

अप्रैल-सितंबर, 2000

सम्पादक :

डॉ. राम गोपाल सिंह

अखिल भारतीय अनुवाद परिषद, अहमदाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोध भारती

अप्रैल - सितंबर, 2000

संपादक : डॉ. राम गोपाल सिंह

सहयोग राशि (नकद, मनीओर्डर, ड्राफ्ट से भेजें)

वार्षिक : 100-00 त्रिवार्षिक : 300-00

द्विवार्षिक : 200-00 चतुर्वार्षिक : 400-00

पंचवार्षिक : 500-00

अध्यक्ष, अखिल भारतीय अनुवाद परिषद

बी-12, पूर्ण पुरुषोत्तम सोसाइटी, भाग-2, राणीप, अहमदाबाद-382480

दूरभाष : (079) 7520826

अनुक्रम / Contents

1. सम्पादकीय 'गुत्थी'		1-3
2. छायावाद : उद्भव और विकास	डॉ. राम गोपाल सिंह	4-17
3. गुजरात में हिंदी कहानी की पहचान	डॉ. सूर्यदीन यादव	18-19
4. मुक्तिबोध की तारसप्तक की कविताओं में राष्ट्रीय चेतना	श्रीमती चंदा मोदी	20-23
5. गुजरात में मीडिया की हिंदी सेवा	डॉ. राम गोपाल सिंह	24-27
6. कबीर की प्रासंगिकता	डॉ. महेश व्यास	28-30
7. हिंदी की अंतरक्षेत्रीय, अंतर्देशीय एवं अंतर्राष्ट्रीय भूमिका	प्रोफे. महावीर सरन जैन	31-33
8. हिंदी भाषा की समस्याएँ और समाधान : वाक्य स्तर पर	डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर	34-36
9. तुलसीपरक पत्र-पत्रिकाएँ एवं प्रकाशन	डॉ. गणेशदत्त सारस्वत	37-46
10. 'वंशवेलि' उपन्यास : एक अभिनव प्रयोग	समी: डॉ. राम गोपाल सिंह	47-48

लेखक - परिचय

• डॉ. राम गोपाल सिंह, वरिष्ठ प्राध्यापक, शोध निर्देशक एवं स्थापक अध्यक्ष, स्नातकोत्तर अनुवाद विज्ञान विभाग, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद • डॉ. सूर्यदीन यादव, 3, पुनीत कालोनी, पवन चक्की रोड, नडियाद, • श्रीमती चंदा मोदी, 15, सिविल लाइंस, जबलपुर, • डॉ. महेश व्यास, अध्यक्ष, हिंदी विभाग, मालदेवजी ओडेदरा महिला कालेज, पोरबंदर • प्रोफे. महावीर सरन जैन, निदेशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, • डॉ. गणेश दत्त सारस्वत, सारस्वत सदन, सिविल लाइंस, सीतापुर • डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर, ए-33, टी आर ए., ट्यूटर्स लेन, त्रिवेंद्रम •

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

130976

एक आत्मव्यंग्य गुत्थी

कल की ही तो बात है, एक वृद्ध मेरे कक्ष में धक्का देकर घुस आया और अपनी बुझी-बुझी-सी आँखें तरेरकर उसने मुझसे फरमाया, "तो तुम्हीं हो सम्पादक, तीन-तीन पत्रिकाओं के साधक, इस युग के भारतेंदु बने फिरते हो और अपने इर्द-गिर्द के परिवेश से लगता है कटे-कटे रहते हो। बड़ी-बड़ी गुत्थियाँ सुलझाते हो, भारी-भारी तक को पटखनी लगाते हो, अनुवाद की पहलूगत चर्चा करते हो, भाषा-साहित्य-शोध में घुसपैठ करते हो और अब तो हँसी-खुशी हास्य-व्यंग्य को भी हथियार बनाते हो। सरकारी तिजोरी को चूना लगाते हो या बीवी-बच्चों की रोटी के पैसे खर्च करके अपने वहम को भारी करते हो। कितने पदमश्री, पदमभूषण हथियाएँ हैं, कितने सम्मान-पदक जुटाएँ हैं; दस-बीस पुरस्कार तो ऐंठ ही लिए होंगे या दो-चार लाख के इनाम तो बटोरे ही होंगे। घर में पत्नी शायद लतात़ती नहीं तभी तो ताड़का-सुतों के पीछे पड़े रहते हो। क्या शारदा गृह में कुछ ताड़कासुत तुम्हें डराते-धमकाते नहीं। तुम्हें नहीं पता...।"

वे बौखलाते रहे, तरह-तरह की तोहमतें लगाते रहे। आखिर मैंने उन्हें समझाया, "महोदय, आप उम्र में मेरे पितृतुल्य हैं, आदरणीय हैं; मेरे कक्ष में हैं अतः मेरी संस्कृति में आप मेरे अतिथि हैं और 'अतिथि देवो भव' के संस्कारों में पलने वाले मुझ जैसों को गाली देने की तो क्या, थूकने तक की आपको पूरी छूट है। पर मेरे सम्पादकीय धर्म को बिना सोचे-समझे गाली मत दीजिए। अगर वह उकस गया तो आपका अतिथि सत्कार कैसे कर पाऊँगा। आखिर आप क्यों बौखलाए हुए हैं, खुलासा तो कीजिए। जाति, कर्म, धर्म और व्यवहार से पक्का राजपूत हूँ अतः घुमा फिराकर कहना-सुनना नहीं आता। गांधी जी की संस्था का अदना गांधीवादी सिपाही हूँ सो पूर्णतः अहिंसक हूँ अतः जरा बताइए, खुलकर समझाइए। आदरणीय महोदय, लीजिए, पहले पानी पीजिए और फिर चैन की साँस लीजिए। मुझे आप से हमदर्दी है।"

वे झेंपे, शरमाए, डोले और सावन-भादों बरसे फिर शनै-शनै बोले, "बेटा, तुम भारत माँ के सच्चे सपूत हो, प्रामाणिक हो पर इस क्षेत्र में घुसे मुखौटाधारी धंधाखोर नक्कालों से भय खाओ, नहीं तो वे तुम्हें कच्चा-चबा जाएँगे; सारे सरकारी-गैर सरकारी विज्ञापन, चंदा, वसूली, दान, अनुदान, फंड आदि सब डकार जाएँगे और तुम्हें अँगूठा दिखाएँगे और नौबत आ जाएगी सब कुछ समेटने की। आज की ही सुनो। तुम्हारा पता पूछते-पूछते एक मुखौटाधारी नकली सम्पादक से भिडंत हो गई। वह अपने पुण्य-प्रताप का चिट्ठा अपने ही सामने अपने ही सखी-सखा पिट्ठुओं से मिठिया-मिठियाकर सुनवाकर फार्म थमा रहा था और चंदे के हजार रूपए देकर मूर्ख मंडली का सदस्य बनाकर अपनी रावण सेना में मुझे भर्ती करने की धुन मचा रहा था । मैं ये हूँ, मैं वो हूँ, मैं इसका अध्यक्ष हूँ, उसका चेयरमैन हूँ- का राग अलाप रहा था । मैंने अचानक आन पड़ी मुसीबत से बचने के लिए थोथी रुचि दिखाई तो उसके सखी-सखा, चेले-चपाटे मुझे खैरात में ढेर सारी पुस्तकें देने का लालच देने लगे और हद तो तब हुई जब वे मेरी किताबें मेरे खर्चे पर अपने टोले के नाम से छापकर उसके लोकार्पण तक का बजट बनाकर चिट थमाने लगे तथा चंदा-राशि को जोड़कर चेक लिखकर लाने की जुगत भिड़ाने लगे । एक लम्पट तो मेरी ओर देखकर मंद-मंद मुस्काया और फिर मद्धिम सुर में उसने फरमाया, "आपकी हमारे यहाँ से छपनेवाली पुस्तक को हम पुरस्कृत करा देंगे। हमारे चपेट के पुरस्कारों में से अभी पचासियों हजार के पुरस्कार बटने शेष हैं । आपके खर्च की भरपाई पुरस्कार के रूप में नकद नारायण दिलवाकर करवा देंगे। अब आपको और क्या चाहिए-हींग लगे न फिटकरी रंग चोखो आवे ।"

एक चेला उचक-उचककर शहद सने शब्द मेरी ओर फेंक-फेंककर मुझे पटाने की भरपूर चेष्टा कर रहा था। एक चेला लाख रूपए भरवाकर टोले का संरक्षक पद देने का सब्जबाग दिखा रहा था। मेरे तो होश उड़ चुके थे। किस बूचड़खाने में आ गया। हर एक कसाई मुझे हलाल करना चाह रहा था जैसे कि मेरे हलाल होने से ही उनके गैंग के दिन फिर जाएँगे। साँस बंद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके वहाँ से भागा और गिरते-पड़ते तुम्हारे भिड़े दरवाजे पर हाथ थमा और सारा आक्रोश तुम पर उतार बैठा। पर तुमसे जो बात करने आया था वह तो रह ही गई।

तुम्हारा पिछले अंक का सम्पादकीय पढ़ा था लाजवाब । कुछ कहने आया था। सुनो। यह कलियुग है। राजनीति वेश्या हो गई है। जो भारी, हट्टा-कट्टा और गाँठ का पूरा हो, जिससे उसका हित सध सके, उसी के साथ हित सधने तक मीठा-मीठा बतियाती है, भोगती है, जो पत चुके, उन्हें लतियाती है। अब तो मर्दानगी की पोल भी जान चुकी है तभी तो अब नामर्दों का वरण करने लगी है। ज्ञानकर्मी होने का ढोंग पालने वाले तुम सब लोग वोट डालने वाले दिन घर में दुबककर बैठे रहे या छुट्टी का फायदा उठाकर बीबी-बच्चों, प्रेमी-प्रेमिकाओं के साथ मौज-मस्ती करते रहे तो एकदिन ये हिजड़े भी तुम्हारे नेता बन जाएँगे और तुम्हें इनके इशारों पर इनकी तरह करतब दिखाने पर विवश होना ही पड़ेगा। सभी क्षेत्रों में हिजड़ापन आगे बढ़ने के लिए पहली शर्त होगी। यदि तुम्हारे पास हिजड़ा होने का प्रमाणपत्र हुआ तो तुम्हें नौकरी मिलेगी अन्यथा तुम्हारी मर्दानगी अपराध घोषित होगी और तुम्हारे पुरखों की करनी का वास्ता देकर तुम्हें समस्त शासकीय सुविधाओं से वंचित रखा जाएगा और मर-मरकर जीने के लिए विवश किया जाएगा। तब क्या करोगे जब सम्पादक बनने के लिए भी पहली शर्त हिजड़ा होना होगी। बोले, सहोगे, बनोगे हिजड़ा। नहीं तो सम्पादक-धर्म निभाओ। लोगों को जगाओ। शब्दवाण चलाओ और उन्हें इस तरह चेताओ कि वोट पड़ते समय कोई न दुबके, सब वोट डालें और जो जानबूझकर वोट न डालने आए, समाज उसे बहिष्कृत कर दे तथा रोटी-बेटी के संबंध तक तोड़ दे। वोट उसे ही दें जो लुच्चा, लफंगा, चोर, बदमाश, माफिया, क्रिमनल, अनपढ़, गँवार, अगूँठा छाप, ठग, विद्वेष फैलाने वाला न हो। वोट डालने के लिए योग्यता अन्य योग्यता के साथ साक्षर होना भी हो । केवल साक्षर ही वोट डालें। निरक्षर एक बार वोट नहीं भी डाल पाएँ तो अगली बार तक साक्षर होकर वोट डालने के पात्र स्वयं को बनाएँ ।

मैं उनकी बातें बड़े ध्यान से सुन रहा था। वे आगे बोले, ''यहाँ लोग जीते जी जिन्हें गाली देते हैं, थूकते हैं, जीना हराम कर देते हैं और शत्रु के मरते ही मृतात्मा की शांति हेतु प्रार्थनाएँ करते हैं, लम्बे-लम्बे भाषण देते हैं। हर कार्यक्रम में श्रद्धाजलि देते हैं। तुम तो जानते ही हो कि अंग्रेजों के जंगलराज में गांधी जी को कोई आँच नहीं आई और अंग्रेजों के बारूद खाने की कोई गोली गांधी जी की तरफ अपना मुँह नहीं कर पाई । गांधी जी ने भारत को आजादी दिलाई और आजाद भारत के सपूतों ने गांधी जी को गोली मारकर उनसे आजादी पाई। फिर बहाए आँसू जिनका सिलसिला अब भी जारी है और जगह-जगह खड़े कर दिए राष्ट्रपिता के पुतले। नागार्जुन ने उस समय ठीक ही लिखा था - ''बापू मरे / अनाथ हो गई भारत माता / अब क्या होगा । रहे कहीं के नहीं । रो-रो करके आँख लाल कर ली धूर्तों ने ।''

उन्होंने फिर राजनीति की राह पकड़ी और कहने लगे, ''राजनीति आज सबसे पुख्ता और कमाऊ धंधा साबित हो गई है। इसमें चोर-उचक्कों, लुच्चे-लफंगों, डकैतों, माफिया गिरोह के सरदारों, भरात माँ के कुपूतों के लिए विशिष्ट स्थान बन गया है। इनके इसने बारे-न्यारे कर दिए हैं। करोड़ों खर्च करके हजारों की नौकरी या कुछ सौ की पेंशन की लालसा रखने वालों की मंशा पर किसी को आखिर शक क्यों नहीं होता। राजनीति में हर चीज करवट लेती है और कोई भी दल मात्र अपने निहित स्वार्थ के लिए किसी के भी साथ होने को तैयार हो जाता है। कभी गुलामों की खरीद-फरोख्त होती थी, अब इनकी होती है। बड़े ऊँचे दामों पर बिकते हैं और बिककर भी ऊँचे-ऊँचे ओहदे पाकर राष्ट्र को दोनों हाथों से लूटते हैं, नोचते-खसोटते हैं और बूढ़ा संविधान उनका कुछ नहीं बिगाड़ पाता। इन्होंने बूढ़े संविधान को इतना नौका-खसोटा है कि अब उसे भी चुस्त-दुरुस्त दिखने के लिए नोचने खसोटने वालों के विरोध के बावजूद भी सरकारी पहल पर प्लास्टिक सर्जरी करानी पड़ रही है।''

''पहले लोग सठिया जाते थे लेकिन अब लोग कुर्सिया जाते हैं और मरते दम तक कुर्सी पर आसीन रहकर समस्त सुख-सुविधाओं के भोग में लिप्त रहते हैं। देश के नौजवान इनके वहमों का शिकार होते हैं और दिग्भ्रमित भी होते हैं तथा जब आंतकवाद का भूत इनके इर्द गिर्द मँड़राता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है तो ये तो कमांडो के सुरक्षा कवच में अपने प्राण पखेरू की सरकारी खर्चे पर सुरक्षा कर लेते हैं पर निरीह जनता को उनके हाल पर मर-मरकर जीने को विवश कर देते हैं । कुर्सी पर रहकर मरना इनकी नियति बनती जा रही है ।

संविधान में दलितों के विकास हेतु तरह-तरह के प्रावधान किए गए हैं पर आरक्षण का अधिकाधिक प्रतिशत फायदा इस दलित वर्ग का क्रीमी लेयर डकार जाता है और जिसके लिए संविधान में यह व्यवस्था की गई थी वह आज भी वंचित है । महिला उत्थान का नारा आज का ताजा मसाला है । महिलाओं के आरक्षण के नाम पर कुछ अग्रणी लोग अपनी अपनी महिलाओं के लिए ऊँचे-ऊँचे पदों के सब्ज बाग भी देखने लगे हैं । अब आरक्षण के नाम पर जनसामान्य की महिलाओं को ठगने की बारी है और क्रीमी लेयर महिलाओं में भी पनपेगा और इसका भरपूर मजा उड़ाएगा । जिनके लिए यह सोचा जा रहा है, उन्हें लाभों से वंचित रखने के लिए पूरी व्यवस्था पहले से कर दी जाएगी ।

दूर क्यों जाते हो, शिक्षा के क्षेत्र में ही देख लो । इस क्षेत्र में भी अब ऐसे-वैसे कैसे-कैसे हो गए हैं- यह सभी जानते हैं । जिन्हें लिखना नहीं आता वे छपते हैं; जिन्हें कविता नहीं आती वे कविता कर-करके महान कवि होने का राग अलापते नजर आते हैं । जिन्हें पढ़ना-पढ़ाना नहीं आता, वे पढ़ाते हैं; जिन्हें बोलना नहीं आता, वे भाषण देते हैं; जिन्हें सँभालना नहीं आता, वे सर्वेसर्वा हैं और मजे की बात यह है कि ये सभी भ्रम पाले हुए हैं कि ये राष्ट्र -निर्माता हैं, भारत भाग्य विधाता हैं । अंग्रजों के जमाने में क्लर्क पैदा करने के लिए बनाई गई शिक्षा पद्धति आज भी यथावत चल रही है । किसे फुर्सत है बदलने की ।

बेरोजगारी का भयानक भूत देश के भावी कर्णधार नवयुवकों को डरा-डराकर भरी जवानी में बुड्ढा बना रहा है पर अंग्रेजों के मानसिक क्लोन भारत माँ के सच्चे सपूत कभी भाषा के नाम पर हुड़दंग मचाते हैं तो कभी जाति-धर्म आदि के नाम पर इन्हें भरपेट रोटी खाने की जुगत भिड़ाने से वंचित रखकर ही चैन की साँस लेते हैं क्योंकि वे भली भाँति जानते हैं कि यदि इन्हें इनका अभिलषित मिल गया तो उनके लिए तथा उनकी अगली पीढ़ियों के लिए बचेगा क्या ? मानव शरीर की इतनी ऊर्जा मयस्सर है; फिरभी, कभी स्वचालन के नाम पर तो कभी कम्प्युटरीकरण के बहाने पेट को रोटी से दूर रखने की जानबूझकर भरसक कोशिश की जाती है । जिनका नाक तलक पेट भरा हो उन्हें ऐसी खुराफातें सूझेंगी ही । सबके लिए काम पैदा करना कर्णधारों का एकमात्र उद्देश्य होना चाहिए और जब तक सबके लिए काम पैदा न कर पाएँ तब तक देश तथा उसके कर्णधारों की जमापूँजी से कार्य करने के लिए तत्पर लोगों के लिए रोटी का प्रबंध होना ही चाहिए । कोई नेता बनकर चार भैंस पालकर चंद वर्षों में खरबों के फेर में पड़ जाता है तो कोई उद्योग के बहाने देश के साथ घात करके टैक्स बचाकर करोड़ों का मुनाफा कमाकर बाहर जाकर क्या से क्या बन जाता है पर जिन्हें काम करके रोटी चाहिए उन्हें न तो काम मिलता है और न रोटी। मोटा और मोटा होता जा रहा है, पतला और पतला।''

वे न जाने क्या कुछ बुलंद इरादे रखते थे लेकिन जिंदगी के बहुत थोड़े दिन शेष होते देख उन इरादों की बुलंदियों को कार्यरूप देने की तमन्ना से चेतना जागृत करने हेतु सत्साहित्य का सहयोग चाहते थे पर वे यह भी अच्छी तरह से जानते थे कि साहित्यकार के साहित्य की संवेदना भी उसके पेट की ज्वाला से ग्रसित है। आज जहाँ साहित्य जनता के लिए न लिखा जाकर यश, पुरस्कार, सम्मान आदि की प्राप्ति हेतु लिखा जा रहा हो तथा साहित्य के इस हेतु श्रेणीकरण का सेहरा भी ऐसे लोगों के सिर पर हो जिनका साहित्य से दूर तक का भी कोई वास्ता न हो, वहाँ उनकी चिंता वाजिब तो थी ही। आशा है, सत्साहित्य से जुड़े लोग इसे गम्भीरता से अवश्य लेंगे और अवसरवादियों को चारों खाने चित्त अवश्य करेंगे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

- डॉ. राम गोपाल सिंह

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छायावाद : उद्भव एवं विकास

– डॉ. राम गोपाल सिंह

हिंदी के विद्वानों एवं इतिहासकारों ने छायावाद की अवधारणा और उसके स्वरूप के संबंध में अपनी-अपनी अलग राय कायम की है। कई विद्वानों ने तो एक बार छायावाद के संबंध में प्रस्तुत एवं स्थापित अपने मत में परिवर्धन भी प्रस्तुत किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'छायावाद' पर अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है कि "पुराने ईसाई संतों का छायाभास तथा योरोपीय काव्य क्षेत्र में प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद के अनुकरण पर रची जाने के कारण बंगला में ऐसी रचनाएँ 'छायावाद' कही जाने लगीं। 'छायावाद' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में जहाँ उसका संबंध काव्यवस्तु से होता है तथा छायावाद शब्द का दूसरा प्रयोग काव्यशैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में है।" इस तरह से शुक्ल जी का छायावाद के प्रति दृष्टिकोण बहुत व्यापक नहीं रहा - इसे सभी विद्वान स्वीकार करते हैं। उन्होंने छायावादियों की रचनाओं के दोष दिखाते हुए असंतोष भी व्यक्त किया। सच बात तो यह है कि छायावाद न तो छायाभास से ही निकला और न ही बंगला में इस शब्द का प्रचलन हुआ। दूसरे, मात्र रहस्यवाद को भी छायावाद नहीं माना जा सकता।

आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी ने छायावाद पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि "लाक्षणिक शैली ही छायावाद नहीं है अपितु उसमें दर्शन की अभिव्यंजना भी है। फिर भी, छायावाद रहस्यवाद से भिन्न है।" डॉ. रामकुमार वर्मा तो छायावाद और रहस्यवाद को अलग-अलग स्वीकार नहीं करते। उनका मानना है कि, "परमात्मा की छाया आत्मा पर पड़ने लगती है, आत्मा की छाया परमात्मा में। यही छायावाद है।"

श्री रामकृष्ण शुक्ल ने भी छायावाद की परिभाषा देते हुए लिखा है कि "छायावाद प्रकृति में मानव जीवन का प्रतिबिंब देखता है, रहस्यवाद समस्त सृष्टि में ईश्वर का। ईश्वर अव्यक्त है और मनुष्य व्यक्त है। इसलिए छाया मनुष्य की, व्यक्ति की देखी जा सकती है, अव्यक्त की नहीं। अव्यक्त रहस्य ही रहता है।"

डॉ. नगेंद्र ने छायावाद के मूल में अंतर्मुखी मानव चेतना का विद्रोह स्वीकार किया है। उन्होंने छायावाद को 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' की संज्ञा दी है। इस परिभाषा 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' की व्याख्या करते हुए उन्होंने लिखा है कि "विद्रोह का अर्थ है उपयोगिता के प्रति भावुकता का विद्रोह, धार्मिक रूढ़ियों के प्रति मानसिक स्वातंत्र्य का विद्रोह और काव्य के बंधनों के प्रति स्वच्छंद कल्पना का विद्रोह।" इस प्रकार, डॉ. नगेंद्र की छायावाद की परिभाषा मनोवैज्ञानिक आधार लिए हुए है और उसे मनोवैज्ञानिक आधार पर ही समझा जा सकता है। अतः इस आधार पर कहा जा सकता है कि जब भौतिक जीवन की असफलताओं के कारण मानव मन अपनी वृत्तियों को बाहर से समेटकर अंतर्मुखी हो जाता है तब उसकी भावना, कल्पना और चिंतना नामक तीनों प्रकार की क्षमताएँ बहुत अधिक क्रियाशील हो उठती हैं। इसी अंतर्मुखी मानसिकता के कारण छायावादी कविता का जन्म हुआ है। अंतर्मुखता की प्रधानता के कारण छायावादी कवि बाह्य वस्तु व्यापारों के विवरण प्रस्तुत नहीं करता बल्कि वह अपने आंतरिक भावावेग को ही अभिव्यक्त करता है। इसी के साथ, उसका यह भावावेग बाह्य पदार्थों को भी मानवीय संवेदना से सजीव कर देता है। उसकी रचना प्रकृति की मात्र अनुकृति न होकर [illegible] करने में उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष सुख की अनुभूति होती है।

महादेवी वर्मा छायावाद की एक आधार स्तंभ रही हैं। उन्होंने छायावादी कवि की अनुभूति प्रधानता के विषय में लिखा है कि "सृष्टि के बाह्याकार पर इतना लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिए रो उठा। स्वच्छंद छंद में चित्रित उन मानव अनुभूतियों का नाम छाया उपयुक्त ही था और मुझे तो आज भी उपयुक्त भी लगता है।" महादेवी जी ने प्रकृति और मानव के गहन संबंध को छायावाद का आधार बताते हुए लिखा कि "छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस संबंध में प्राण डाल दिए जो प्राचीन काल से बिम्ब-प्रतिबिम्ब रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को अपने दुख में प्रकृति उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी।" इसी आधार पर महादेवी जी ने छायावाद को 'प्रकृति के प्रांगण में जीवन का उद्‌गीथ' की संज्ञा से अभिहित किया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने छायावादी कविता के प्राणों की तरफ इशारा करते हुए लिखा कि "मानवीय दृष्टि के कवि की कल्पना अनुभूति और चिंतन के भीतर से निकली हुई वैयक्तिक अनुभूतियों के आवेग की स्वतः समुच्छित अभिव्यक्ति बिना किसी आयास के और बिना किसी प्रयत्न के, स्वयं निकल पड़ा हुआ भावस्रोत ही छायावादी कविता का प्राण है।"

छायावाद की उपर्युक्त परिभाषाओं के आलोक में स्पष्टतः कहा जा सकता है कि छायावादी कविता का स्रोत कवि का वह मानसिक गठन है जिसमें कल्पना, चिंतन और अनुभूति की प्रधानता होती है। लौकिक जीवन की विषमताओं से असंतुष्ट व्यक्ति ही अंतर्मुखी होकर दार्शनिक, स्वप्नदृष्टा और अतिभावुक बन जाता है। ऐसा आत्मनिष्ठ व्यक्ति सामाजिक विषमताओं से समझौता नहीं कर सकता। अतः वह सामाजिक रूढ़ियों, विकृतियों और बंधनों से असंतुष्ट होकर विद्रोह करने लगता है अथवा अतीत के गौरव में आत्मतृप्ति का अनुभव करता है या फिर भविष्य के सुख-सपनों की रंगीनियों में खो जाता है। इस तरह से, जीवन की विद्रूपताओं और विषमताओं की प्रतिक्रियाओं से उसके मन में विद्रोह, संघर्ष, स्वातंत्र्य लालसा, अतीत-गौरव का गायन और भविष्य प्रेम की प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। कई बार अंतर्मुखी व्यक्ति उन विराट वस्तुओं और व्यक्तियों के भावन में भी आत्मतुष्टि का अनुभव करता है और उसकी लौकिकता में भी उसे अलौकिकता का आभास होने लगता है। कई बार उसे प्रकृति के विराट रूपों के पीछे किसी अज्ञात सत्ता के दर्शन होते हैं। कोई अज्ञात सत्ता उसे नक्षत्रों से निमंत्रण देती हुई प्रतीत होती है। ऐसी स्थिति में छायावादी कवि रहस्यानुभूति के स्तर पर पहुँच जाता है। लौकिक प्रेमी के अभाव में अज्ञात प्रियतम की प्रतीक्षा में साधना के सजल दीपक जलाते रहना भी इसी रहस्यानुभूति का एक भिन्न रूप है।

इस तरह से कहा जा सकता है कि रहस्यानुभूति भी छायावादी अंतर्मुखता के संचरण का स्वाभाविक क्षेत्र है। इन दोनों में अंतर मात्र इतना ही है कि जहाँ छायावादी कवि जीवन और जगत में अथवा प्रकृति के समस्त प्रसार में मानवीय संवेदना का संचार अनुभव करता है, वहाँ रहस्यवादी कवि इससे भी आगे बढ़कर समग्र विश्व में किसी अज्ञात प्रियतम या अलौकिक सत्ता का साक्षात्कार करता है। वास्तव में, जिस दिव्यता का वह दर्शन करता है, वह भी उसकी आत्मनिष्ठ कल्पना की ही उपज है, उससे भिन्न कदापि नहीं है। साथ ही, वह दिव्य प्रियतम भी लौकिक प्रियतम का ही एक कल्पित रूपांतरण है जिसे उसके मानवीय रूप में पहचाना जा सकता है। उदाहरण के लिए 'मेरे प्रियतम को भाता है तम के परदे में आना' में जिस अज्ञात प्रियतम का उल्लेख किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है, वह भी नितांत मानवीय ही प्रतीत होता है। अतः इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि छायावाद और रहस्यवाद दोनों ही मानव मन की उपज हैं। दोनों में ही भावुकमन आत्मतृप्ति का अनुभव करता है । छायावादी कवि को मानव चेतना के प्रसार में जो सुख मिलता है, वही सुख रहस्यवादी कवि को प्रकृति के प्रसार में प्रतिबिंबित दिव्यता के दर्शन में मिलता है, क्योंकि वह दिव्य भी उसके अहं का विस्तार है या उसी की आत्मा का प्रक्षेपण है। छायावादी को लौकिक प्रियतम के प्रेम में जो सुखानुभूति होती है, वहीं रहस्यवादी को अलौकिक प्रियतम के मिलन में क्योंकि वह अलौकिक प्रियतम उसी की कल्पना की सृष्टि है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर स्पष्ट होता है कि छायावाद अंतर्मुखी मानव मन की भावोंवेगमयी अभिव्यक्ति है जिसमें असंतोष, पीड़ा, विद्रोह, स्वातंत्र्य लालसा, अतीत-गौरव गायन, भविष्यनिष्ठा और रहस्यानुभूति आदि प्रवृत्तियों की प्रधानता रहती है। अंतर्मुखी मन की दमित भावनाओं की अभिव्यक्ति भी सीधी और सपाट न होकर भंगिमामयी होती है। भाषा की लाक्षणिकता या प्रतीक योजना, बिम्ब विधान, मानवीकरण, अर्थालंकारों की प्रधानता और संगीतात्मकता छायावादी अभिव्यक्ति में पूरी तरह से समायी हुई है।

छायावाद का प्रवर्तन एवं उद्‌भव : छायावाद का विवेचन प्रस्तुत करने से पहले बार-बार एक प्रश्न मन में कौंधता है कि आखिर छायावाद का प्रवर्तक कौन है ? अर्थात् छायावाद के प्रवर्तन के पीछे मुख्यतः किसका हाथ रहा है ? वैसे छायावादी प्रवृतियाँ किसी एक युग तक सीमित नहीं हैं । ठीक उसी तरह जिस प्रकार भक्ति, रीति आदि की प्रवृत्तियाँ किसी युग विशेष तक सीमित नहीं हैं। छायावाद युग से पूर्व श्रीधर पाठक, घनानंद, रसखान, मीरा, सूर, जायसी तथा इसके भी पूर्व के संस्कृत साहित्य का अवलोकन करें तो वैदिक ऋषियों, वाल्मीकि, कालिदास, भर्तृहरि आदि के उद्‌गारों में भी न्यूनाधिक रूप से छायावादी प्रवृत्तियाँ देखने को मिल जाती हैं। वैसे तो छायावादी प्रवृत्तियों की प्रधानता के कारण ही इस युग को छायावाद कहा गया है। इस युग में विदेशी शासन के दमन के कारण भारतीय जनता का कुंठित हो जाना स्वाभाविक ही था। बाह्य जीवन की विफलताओं, घुटन और दबावों ने कवि मन को अंतर्मुखी और अतिसंवेदनशील बना दिया। जो कवि मन बाहरी सामाजिक जीवन में विफल था, वह अतीत के गौरव गायन में, भविष्य के सुहाने सपनों में, प्रकृति की रमणीय क्रीड़ा भूमि में रमने लगा। पहले पहल तो इन कवियों की सूक्ष्म अस्पष्ट संवेदनाओं को उनकी उलझन के आधार पर उपहास में 'छाया' कहा गया। बाद में, यही शब्द अंतर्मुखी आवेगपूर्ण काव्यधारा के लिए रूढ़ हो गया।

वैसे सन् 1850 ई. के बाद से ही हिंदी कविता में एक महान् परिवर्तन देखने में आने लगा था। प्रथम महायुद्ध के पश्चात इस परिवर्तन में और अधिक तेजी आई। हिंदी कविता संक्रांति और पुनरुत्थान की मंजिलों को पारकर इस युग में विद्रोह के रास्ते पर आगे बढ़ी। यह विद्रोह देश की आर्थिक परिस्थितियों का परिणाम था। यह विद्रोह राजनीति, धर्म, दर्शन, साहित्य, कला-इन सभी क्षेत्रों में विविध रूप धारण करके सामने आया। पूँजीवाद, स्वतंत्रता का भ्रम, पूँजीवाद और राष्ट्रीयता भी इसके लिए कम कारक भूमिका नहीं निभाते।

छायावाद के संदर्भ में 'रोमांटिसिज्म' और 'छायावाद' के अंतर को भी स्पष्ट कर देना प्रस्तुत संदर्भ में सर्वथा उचित होगा। जिस प्रकार से यूरोप में अठारहवीं सदी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंत और उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ की कविता रोमांटिक कविता थी, उस प्रकार की कविता उस अर्थ में सामंतवाद के विरुद्ध क्रांति का शंखनाद फूँकने वाली पूँजीवादी कविता नहीं थी। रोमांटिक कविता का विद्रोह केवल सामंतवाद और उसके समर्थकों के विरुद्ध था किंतु छायावाद का विद्रोह सामंतवाद के साथ ही साम्राज्यवाद के विरुद्ध भी था। अतः पूरे छायावाद को दृष्टि में रखकर मूल्यांकन किया जाए तो निष्कर्ष यही निकलेगा कि छायावाद का विरोध न तो सामंतवाद पर ही पूर्णरूपेण केंद्रित हो सका और न साम्राज्यवाद के विरोध पर ही अपना ध्यान केंद्रित कर सका जिसके परिणामस्वरूप छायावादी कविता में रोमांटिक कविता जैसी शक्ति, वेग और तीव्रता कहीं देखने को नहीं मिलती। दूसरा सबसे बड़ा कारण यह था कि यूरोप में रोमांटिक कविता के समय तक पूँजीवाद जितना फल-फूल सका था, जितनी उत्तुंगता व्याप्त कर चुका था उतना भारतीय पूँजीवाद का द्वितीय महायुद्ध के बाद तक भी न तो विकास ही हुआ था और न वह बढ़-चढ़कर उत्तुंगता की कोई सीमा ही आबद्ध कर पाया था।

इसी तरह से, यूरोपीय पूँजीबाजार को पूरी की पूरी दुनिया का सारा बाजार उपलब्ध था किंतु भारतीय पूँजीबाजार की उतनी बिसात कहाँ ? उसके पास तो अपने अधिकारों के संरक्षण के लिए भी कुछ कर गुजरने की क्षमता या साहस नहीं था। अंग्रेज शासक और देशी रजवाड़े उसके सिर पर भूत की भाँति सवार थे। अतः उनके विरुद्ध खुलकर विद्रोह करने का भी दम-खम उसमें पैदा नहीं हो पाया। वह मध्यमवर्ग के शिक्षित लोगों की प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से आर्थिक सहायता करता रहा। पूँजीपति वर्ग सीधे कभी भी यहाँ राष्ट्रीय आंदोलनों या कौंसिलों के चुनावों में भी अन्य वर्गों का नेतृत्व करने के लिए सामने नहीं आया बल्कि वह उनका प्रच्छन्नतः साथ अवश्य देता रहा। छायावादी कविता इस अर्थ में यूरोपीय रोमांटिक कविता की क्रांतिकारिता से कोसों दूर रही क्योंकि वह जिस वर्ग को साथ लेकर चल रही थी या जिसकी भावनाएँ व्यक्त करने का दम भर रही थी, वह वर्ग न तो क्रांतिकारी वर्ग था और न ही उस वर्ग का क्रांति से कहीं भी किसी तरह का कोई वास्ता ही था। अतः भारतीय छायावादी कविता, विशेषतः हिंदी छायावादी कविता, की यूरोपीय रोमांटिक कविता से पूरी तरह तुलना करना व्यर्थ है। हाँ, भारतीय छायावादी कविता ने यूरोपीय रोमांटिक कविता के कदम से कदम मिलाने की कोशिश की लेकिन दोनों की आधारभूमि एवं भावभूमि समान नहीं थी, अतः अंतर आना स्वाभाविक ही था और यह अंतर आए बिना नहीं रहा। देश,काल, समाज ने अपनी भूमिका निभाई तथा उधार लिए हुए उन्माद ने अपना क्षणिक रंग भी दिखाया जिसके प्रति आम राय बना पाना मुश्किल तो था ही।

छायावाद का उद्भव : छायावाद युग ऊपर से सरसरी तौर पर देखने पर भ्रमवश मात्र छायावाद अवश्य आभासित हो लेकिन गहराई से इस युग की कविता का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि इस युग में अनेकानेक काव्य प्रवृत्तियाँ; यथा : छायावाद, रहस्यवाद, स्वच्छंदतावाद, व्यक्तिवाद, अहंवाद, राष्ट्रीयतावाद, मानवतावाद, प्रगतिवाद आदि प्रवर्तमान थीं। इस युग की मुख्य प्रवृत्ति के साथ अन्य कई प्रवृत्तियों के गड्ड-मड्ड हो जाने का प्रमुख कारण यह था कि यूरोपीय साहित्य ने भारतीय साहित्य को प्रत्यक्षतः प्रभावित किया था तथा यूरोपीय साहित्य भारत में छायावाद युग के शुरू होने तक स्वच्छंदतावाद की मंजिल से कोसों दूर जा चुका था और विकास की कई मंजिलें फतह कर चुका था। इंग्लेंड में रोमांटिक विद्रोह की समयावधि सन् 1750 से लेकर 1825 ई. तक थी। तदुपरांत 1930 ई. तक ह्रासोन्मुख स्वच्छंदतावाद, प्रतीकवाद, भविष्यतवाद,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथार्थवाद, अतियथार्थवाद आदि रहस्यवादी और घोर व्यक्तिवादी प्रवृत्तियाँ उत्पन्न, विकसित और मृतप्राय हो रही थीं। द्वितीय महायुद्धोत्तर काल में हिंदी के कवियों ने यूरोपीय साहित्य को समझने तथा उसमें अपनी घुसपैठ करने की चेष्टा की। साथ ही इस काल के वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज, कीट्स, वायरन आदि साहित्यकारों ने ही नहीं अपितु परवर्ती अंग्रेजी कवियों स्विनवर्ग, ब्राउनिंग, आरनोल्ड, टॉमस हार्डी, वाल्ट ह्विटमैन, पीट्स आदि से प्रभाव ग्रहण किया। रवींद्रनाथ ठाकुर की कविता ने तो और अधिक प्रत्यक्ष प्रभाव छोड़ा। इस संबंध में छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत (आधुनिक कवि की भूमिका, पृ. 23) के मत का उल्लेख करना उचित होगा। उन्होंने लिखा कि ''पल्लवकाल में मैं उन्नीसवीं सदी के अंग्रेजी कवियों मुख्यत: शैली, वर्ड्सवर्थ, कीट्स और टेनिसन से विशेष रूप से प्रभावित रहा हूँ, क्योंकि इन कवियों ने मुझे मशीन युग का सौंदर्यबोध और मध्यवर्गीय संस्कृति का जीवन स्वप्न दिया है । रवि बाबू ने भी भारत की आत्मा को पश्चिम की मशीन युग की सौदर्य कल्पना में ही परिधानित किया है । पूर्व और पश्चिम का मेल उनके युग का स्लोगान भी रहा है । इस प्रकार, मैं कवींद की प्रतिभा के गहरे प्रभाव को भी कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करता हूँ और यदि लिखना एक उपचेतन व्यापार (अनकांशस प्रोसेस)है तो मेरे अपचेतन ने यत्र-तत्र इन कवियों की निधियों का उपयोग भी किया है और उसे अपने विकास का अंग बनाने की चेष्टा की है ।

स्वयं रवींद्रनाथ ठाकुर की कविता उनके ब्रह्मसमाजी व्यक्तित्व को पाश्चात्य दर्शन और साहित्य के रंग में रंगकर अपना सम्मिश्रित छटायुक्त आलोक बिखेरती है । इसका कारण मात्र यह है कि रवींद एक ओर ब्रह्मसमाजी थे, वहीं उन पर पाश्चात्य दर्शन एवं साहित्य का प्रभाव किसी भी सीमा तक भारतीय पुरातन साहित्य और संस्कृति के प्रभाव से कम नहीं था । उन्होंने इसमें संतुलन बिठाया । इन्होंने उपनिषदों के ब्रह्मवाद, कबीर के योग और ज्ञानमार्ग तथा सूफियों के प्रेममार्ग का पाश्चात्य रहस्यवादियों ब्लेक, वर्ड्सवर्थ आदि के जीवनदर्शन से सुंदर, सुघड़ समन्वयात्मक मेल प्रस्थापित कराया । इसी समय 1913 ई. में रवींद्रनाथ जी की 'गीतांजलि' नोबल पुरस्कार से सम्मानित हुई। अत: इस विश्वकृति का भी उस युग के कवियों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था । स्वामी विवेकानंद, स्वामी रामतीर्थ आदि ने दर्शन, आध्यात्म और भक्ति की तरफ झुकाव के लिए जो प्रचार-प्रसार किया, इस ओर भी उस काल के कवियों का आकर्षित होना स्वाभाविक ही था । इससे इतना अवश्य सिद्ध होता है कि छायावाद के कवियों ने प्रचीन भारतीय दर्शन के अध्ययन के साथ भक्तिकालीन कवियों का भी गहन अध्ययन किया । स्वयं पंत जी 'आधुनिक कवि की भूमिका' (पृ.3) पर इसे स्वीकार करते हुए लिखते हैं कि ''वीणा और पल्लव विशेषत: मेरे प्राकृतिक साहचर्य काल की रचनाएँ हैं । तब प्रकृति की महत्ता पर मुझे पूर्ण विश्वास था और उसके व्यापारों में मुझे पूर्णता का आभास मिलता था । यह मेरी सौंदर्यलिप्सा की पूर्ति करती थी जिसके सिवा उस समय मुझे कोई वस्तु प्रिय नहीं थी । स्वामी विवेकानंद और स्वामी रामतीर्थ के अध्ययन से प्रकृति प्रेम के साथ ही मेरे प्राकृतिक दर्शन के ज्ञान और विश्वास में अभिवृद्धि हुई।

पंत जी की तरह स्वयं महादेवी वर्मा भी इसी स्वीकारोक्ति के स्वर में स्वर मिलाती हुई (आधुनिक कवि, पृ.10) लिखती हैं कि ''जो रहस्यानुभूति हमारे ज्ञान क्षेत्र में एक सिद्धांत मात्र थी वही हृदय की कोमलतम भावनाओं में प्राण प्रतिष्ठा पाकर तथा प्रेममार्गी सूफी संतों के प्रेम में अतिरंजित होकर ऐसे कलात्मक रूप में अवतीर्ण हुई जिसने मनुष्य के हृदय और बुद्धि पक्ष दोनों को संतुष्ट कर दिया । एक ओर कबीर के हटयोग साधना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपी सम-विषम शिलाओं से बँधा हुआ, दूसरी ओर जायसी के विशद प्रेम-विरह की कोमलतम अनुभूतियों की वेला में उन्मुक्त या रहस्य का समुद्र आधुनिक युग को क्या दे सका, यह भी कहना कठिन होगा ।''

गांधी जी इस समय तक अपने आपको युग पुरूष की राह पर ले जा चुके थे अत: उन्होंने भी भारतीय एवं पाश्चात्य दर्शन को समन्वयात्मक दायरे में बाँधकर उसे अपने जीवन में उतारने की कोशिश कर दी थी जो उनके जीवन दर्शन के रूप में तत्कालीन चिंतकों को पूर्णत: आकर्षित करने लगी थी । अत: गांधी जी का जीवन दर्शन एवं प्रभाव भी छायावादी कवियों पर पड़ना अवश्यंभावी था । इसी समयावधि में सन् 1917 ई. में रूस में राज्यक्रांति हुई और समाजवादी राज्य की स्थापना हुई। अत: इस उथल-पुथल से पूरे विश्व के लोगों का ध्यान मार्क्सवाद पर आ टिका। टॉलस्टॉय, रस्किन आदि ने ईसाई धर्म की पवित्रता, त्याग और भक्ति के आदर्शों का जो भी उपदेश दिया उसका प्रभाव भारतीय कवियों पर गांधी जी की विचारधारा के माध्यम से बखूबी पड़ा। अत: रहस्यवाद और मानवतावाद की विचारधाराएँ हिंदी कविता में बड़े ही सामंजस्यपूर्ण सुंदर सुघड़ सुमेल के साथ प्रवाहित होने लगीं। इसके साथ ही, व्यक्तिवादी विद्रोह की भावना एवं प्रथम महायुद्ध का व्यापक प्रभाव भी छायावाद के उद्भव में अपनी कम भूमिका नहीं निभाते अपितु उसे बरबस एक दिशा भी प्रदान करते हैं।

छायावाद के प्रवर्तन के संबंध में इसी दृष्टि से विद्वानों में मतभेद बना हुआ है। आचार्य शुक्ल के मतानुसार हिंदी कविता की नई धारा (छायावाद) का प्रवर्तन इन्हीं को- विशेषत: मैथिलीशरण गुप्त और मुकुटधर पांडेय को समझना चाहिए। इलाचंद जोशी शुक्ल जी के मत का खंडन करते हुए लिखते हैं कि ''छायावाद की उत्पत्ति और विकास के संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का वक्तव्य एकदम भ्रामक, निर्मूल एवं मनगढ़ंत है। .....प्रसाद जी अविवादास्पद रूप से हिंदी के प्रथम छायावादी कवि ठहरते हैं। सन् 1913-14 के आसपास 'इंदु' में प्रतिमास उनकी जिस ढंग की कविताएँ निकलती थीं, जो बाद में 'कानन कुसुम' के नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित हुईं, वे निश्चित रूप से तत्कालीन हिंदी काव्यक्षेत्र में युग प्रवर्तन की सूचक थीं ।'' इसी मत की संपुष्टि करते हुए श्री विनय मोहन शर्मा एवं श्री प्रभाकर माचवे ने छायावाद का श्रीगणेश सन् 1913 ई. से ही माना है लेकिन इन दोनों ने छायावाद का प्रवर्तन श्री माखनलाल चतुर्वेदी की 'भारतीय आत्मा' से माना है। श्री नंद दुलारे वाजपेयी के अनुसार साहित्यिक दृष्टि से छायावादी काव्य शैली का वास्तविक अभ्युदय सन् 1920 के पूर्व-पश्चात् पंत की 'उच्छ्वास' नाम की काव्य पुस्तिका के साथ माना जा सकता है। श्री वाजपेयी की दृष्टि से और गंभीरता से सोचें तो इतना अवश्य जोड़ सकते हैं कि छायावाद का प्रवर्तक अवश्य ही कोई छायावादी कवि ही रहा होगा और आज सभी छायावादी कवियों का साहित्य हमारे सम्मुख है । अत: छायावाद के प्रवर्तक कवि की बात करने से पहले छायावाद की भावभूमि की कविता सर्वप्रथम किस कवि ने लिखी तथा उस कवि की कविता में छायावाद का प्रमाण किस मात्रा में है - इस आधार पर परीक्षा की जाय तो परिणाम अवश्य ही संतोषजनक एवं अपक्षपातपूर्ण निकलेंगे। इस दृष्टि से अवलोकन करें तो प्रसाद जी काव्यक्षेत्र में पंत जी से पहले आए। 'झरना' की भूमिका के प्रकाशकीय वक्तव्य का यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है। इसके प्रकाशकीय वक्तव्य में उल्लिखित है कि ''जिस शैली की कविता को हिंदी साहित्य में आज दिन छायावाद नाम मिल रहा है, उसका प्रारंभ प्रस्तुत संग्रह द्वारा ही हुआ था। इस दृष्टि से यह संग्रह अत्यंत महत्वपूर्ण है।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'झरना' के इस प्रकाशकीय वक्तव्य का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से खंडन नहीं हुआ है, अत: प्रसाद जी के 'झरना' (सन् 1918 ई.) से ही छायावाद का प्रारंभ माना जा सकता है। ऐसी बात नहीं कि प्रसाद जी 'झरना' के प्रकाशन के पहले छायावादी कविता नहीं लिख रहे थे; उनकी कविताएँ काफी समय पहले से पत्र-पत्रिकाओं में छप रहीं थीं और वे कविताएँ पूर्णत: छायावादी कविताएँ ही थीं। प्रसाद जी की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कविताओं का प्रकाशन काल सन् 1909 से 1917 ई. तक का है। अत: इस तर्क के आधार पर छायावाद को 'झरना' के प्रकाशन काल सन् 1918 से पहले भी ले जाया जा सकता है।

इस तरह छायावाद के उद्‌भव के पीछे अनेकानेक कारण एवं कारकतत्व अपनी भूमिका का निर्वाह करते दृष्टिगत होते हैं। यदि बिल्कुल सीधी एवं प्रत्यक्ष दृष्टि डाली जाए तो सन् 1920 में श्री मुकुटधर पाण्डेय का 'हिंदी में छायावाद' नामक एक लेख 'श्री शारदा' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। इसके ठीक एक वर्ष पश्चात् सन् 1921 ई. में श्री मुकुटधर पाण्डेय का 'हिंदी में छायावाद' विषयक दूसरा लेख 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। इन दोनों लेखों में श्री पांडेय जी ने छायावादी कविता की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला था। इससे स्पष्ट होता है कि सन् 1920-21 तक 'छायावाद' शब्द का प्रयोग हिंदी की विशिष्ट काव्यधारा के लिए रूढ़ हो गया था। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने श्रीधर पाठक, मुकुटधर पाण्डेय और मैथिलीशरण गुप्त को छायावाद का प्रवर्तक माना है किंतु इन तीनों कवियों में अंतर्मुखता अर्थात् भावना, कल्पना और चिंतना का वह तीव्र, सूक्ष्म और उत्कट रूप नहीं मिलता जो जयशंकर प्रसाद, निराला आदि परवर्ती कवियों में देखने को मिलता है। यद्यपि श्रीधर पाठक की 'काश्मीर सुषमा' और मैथिलीशरण गुप्त की 'झंकार' संकलन की कविताओं में छायावादी प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं तथापि अनुभूति की अभीष्ट तीव्रता के अभाव में इन कवियों को छायावाद का प्रवर्तक नहीं माना जा सकता।

जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है तदनुसार छायावादी कविता का आरंभ वास्तव में प्रसाद के 'झरना' (1918 ई.) काव्यसंग्रह से हुआ। इस ग्रंथ के प्रकाशकीय वक्तव्य में इसकी घोषणा भी है। इस दृष्टि से यह संग्रह बड़ा ही महत्वपूर्ण है। इस संग्रह के प्रकाशन के पहले प्रसाद जी की कविताएँ 'सरस्वती' पत्रिका में छपा करती थीं। इसलिए कुछ आलोचक छायावादी काव्यधारा का उदय सन् 1910 ई. के आसपास से भी मानते हैं। वैसे छिटपुट कविताओं को छोड़कर विचार करें तो छायावादी कविता की प्रारंभिक कृति 'झरना' ही ठहरती है। इसके बाद तो पंत, निराला आदि की रचनाएँ इसी भावभूमि को लेकर आगे चलने लगीं।

'छायावाद' का सीमांकन विभिन्न विद्वान इन्हीं बातों की अपने-अपने अनुसार व्याख्या करके करते रहे हैं। छायावाद के आरंभ के संबंध में तो दो टूक राय बन जाती है कि इस युग का आरंभ सन् 1918 में 'झरना' से हुआ। छायावाद के अंत और प्रगतिवाद के प्रारंभ के बीच का छोर ढूँढ़ने की कोशिश करना भी सर्वथा आवश्यक ही होगा। छायावाद काल के आगे के कवियों की रचनाओं पर दृष्टिपात करें तो स्पष्ट होता है कि छायावादी काव्यचेतना को सर्वथा मूर्तिमान करने वाली प्रसाद जी की रचना 'कामायनी' का प्रकाशन सन् 1935 में हुआ। इसके आगे की रचनाओं पर दृष्टि डालें तो पंत के 'युगांत' का प्रकाशन सन् 1936 ई. में तथा निराला की 'अनामिका' का प्रकाशन सन् 1938 ई. में हुआ। इन दोनों संग्रहों में अनेक ऐसी रचनाएँ संकलित हैं जो छायावादी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार के बिल्कुल आगे जाकर एक नए ठोस यथार्थ के निकट आने का प्रयास करती जान पड़ती हैं। इसके पीछे छिपे मर्म अर्थात् राजनीतिक माहौल पर एक दृष्टि डालना और उसकी अभिव्यक्ति का प्रभाव तत्कालीन कविता में ढूँढ़ निकालना भी इस दृष्टि से आवश्यक है। सन् 1936 ई. में प्रांतों में कांग्रेस के मंत्रिमंडल स्थापित हुए लेकिन तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने भारतीय प्रतिनिधि दलों से विचारविमर्श किए बिना ही जब विश्वयुद्ध में भारत के शामिल होने की घोषणा कर दी तो सन् 1939 ई. में मंत्रिमंडलों ने त्यागपत्र प्रस्तुत किए। अत: 1936 से 1939 का समय भारतीय राजनीतिक इतिहास में नए मोड़ का समयसूचक है। कांग्रेस के मंत्रिमंडलों में शामिल होने की तरह-तरह की प्रतिक्रियाएँ हुईं जो नई चेतना के शंखनाद की निशानी थीं। उस काल के कवि भी इस कालग्रह चेतना से अपने आप को बचा नहीं पाए। परिणामस्वरूप राजनीति परिवर्तन से उत्पन्न चेतना काव्य में भी आने लगी।

छायावाद का विकासक्रम : वैसे सामंतवादी प्रवृत्तियों के विरुद्ध पूँजीवादी विद्रोह का प्रारंभ संक्रांतियुग में ही हो गया था। व्यक्ति स्वातंत्र्य इस विद्रोह के पीछे बलवती कामना के रूप में कार्यरत था। संक्रांति युग और पुनरुत्थान युग में धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक रूढ़ियों का तो विरोध किया ही गया पर धर्म का सर्वथा त्याग नहीं किया गया। छायावादी युग में धर्म का प्रभुत्व कुछ घट-सा गया और उसकी जगह आध्यात्मिकता और दार्शनिकता ने ले ली। छायावादी कवियों ने प्राचीन भारतीय दर्शन और भक्तिकालीन काव्य से प्रभाव ग्रहण किया । साथ ही, रीतिकालीन काव्य परंपरा का खुले रूप में विरोध भी किया गया। 'पल्लव' की भूमिका में कविवर सुमित्रानंदन पंत (पृ. 10) ने उल्लेख किया है कि "भाव और भाषा का ऐसा शुक्र-प्रयोग, राग और छंदों की ऐसी एक स्वर रिम-झिम, उपमा और उत्प्रेक्षाओं की ऐसी दादुरावृत्ति, अनुप्रास और तुकों की ऐसी अश्रांत उपलवृष्टि क्या संसार के और किसी साहित्य में मिल सकती है। घन की घहर, भेंकी की भहर, झिल्ली की झहर, बिजली की बहर, मोर की कहर, समस्त संगीत तुक की एक ही नहर में बहा दिया और बेचारे औपमायन की बेटी उपमा को तो बाँध ही दिया ? किसलय, प्रवाल, लाख आदि और इन धुरंधर साहित्याचार्यों (?) की शुक, दादुर, ग्रामोफोन इत्यादि।" इसी तरह के भाव अन्यत्र भी व्यक्त हुए कि "एक दीर्घकालीन कवि के लिए सम्प्रदाय अक्षयवट और दरबार कल्पवृक्ष बनता आ रहा था और इस स्थिति का बदलना एक व्यापक उलटफेर के बिना संभव नहीं था जो समय से सहज हो गया।" (महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, पृ. 52)

छायावादी कवियों ने भाषा, छंद, काव्यनियम, कल्पना इन सबमें प्राचीन लकीरों को छोड़कर नए रास्ते अपनाए। इस तरह, छायावाद में रीतिकाल की काव्य परंपरा के विरुद्ध होनेवाली प्रतिक्रिया की परिणति विद्रोह के रूप में हुई। छायावादी कवियों ने स्थूल शृंगार के बंधनों को ध्वस्त करके सूक्ष्म मनोलोक में अपने नीड़ की सृष्टि की। अतिशय बौद्धिकता की जगह भावुकता और हार्दिकता की, भौतिक जीवन दृष्टि की जगह आध्यात्मिक जीवन दृष्टि की, स्थूल ऐंद्रिय शृंगारिक भाव या प्रेम के पूर्व बहिष्कार की जगह आदर्शवादी (प्लेटॉनिक) प्रेम और स्वाभाविक प्रेम की प्रतिष्ठा की।

छायावाद ने एक आदर्शवाद की प्रतिस्थापना की और आदर्शवाद का भ्रम भ्रममात्र ही रहा। स्वतंत्रता के भ्रम की बात मात्र प्रकृति के क्षेत्र में ही नहीं हुई, आध्यात्म, कल्पना और क्रांति के स्वप्नलोकों का क्षेत्र भी अछूता नहीं रहा। व्यक्ति को स्थूल सामाजिकता के पाश से मुक्त करने के लिए छायावादियों ने ... का सहारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ढूँढ़ा। महायुद्ध की भीषण त्रासदी के परिणामस्वरूप विश्वव्यापी मंदी का भारतीय उद्योगों पर भी व्यापक प्रभाव पड़ा। अतः पूँजीवाद द्वारा दिखाया गया स्वतंत्रता का मायाजाल स्वयमेव ध्वस्त हो गया। बेकारी ने अपना जहरीला फन फैलाया और पूँजीवाद का असली रूप छिप नहीं सका। अतः छायावादी कवि की पूँजीवादी प्रभावस्वरूप उत्पन्न स्वतंत्रता की कल्पना के ध्वस्त होने में देर नहीं लगी। इस सबसे मध्यवर्ग अहंवादी, भाग्यवादी और निराशावादी बन गया। इसका परिणाम प्रत्यक्षतः यह हुआ कि सन् 1930 ई. के पश्चात् छायावादी कविता में निराशा, भ्रम, मृत्युपूजा, क्षयी रोमांस, काल्पनिक अस्वस्थ ऐंद्रिकता और घोर समाजविरोधी अनुत्तरदायित्व की प्रतिक्रियावादी भावनाएँ दिखाई पड़ने लगीं। अभाव, वेदना, समाज की विषमता आदि को शाश्वत मान लिया गया और निराशा के सागर में डुबकी लगाने के प्रयास किए गए।

सन् 1930 के बाद परवर्ती छायावाद में जीवन के प्रति विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया। यद्यपि इस दृष्टिकोण में भी वैज्ञानिकता का अभाव तो था ही। चिंतन की प्रधानता ने छायावादी कवि को और अधिक अंतर्मुखी बना दिया। निराशावादिता और ऐंद्रिकता अंतर्मुखी चिंतन और आंतरिक सामंजस्य की ओर प्रवहमान होने लगी। वेदना में जगत की कल्याणकारिता खोजी गई। इतना ही नहीं, वेदना को व्यक्ति की पवित्रता का माध्यम माना गया। अतः वेदना को आदर्शवादी आवरण मिल ही गया। छायावादी कवियों ने वेदना के माध्यम से अपने काव्य और जीवन को ऊँचाई प्रदान की। 'रश्मि' की भूमिका (पृ. 7) में महादेवी वर्मा ने इस संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा कि ''दुख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक पहुँचा सकें किंतु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाए बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है परंतु दुख सबको बाँटकर। विश्व जीवन में अपने जीवन् को, विश्व वेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जलबिंदु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।''

छायावाद का वाद के रूप में आरंभ 1918 में होकर इसका अंत 1938 में हुआ सिद्ध होता है। यदि छायावादी स्वर को प्रमुख स्वर के रूप में ही लिया जाए तो छायावादी कविता 1920 से 1940 ई. के मध्य आरंभित, विकसित, चरम उत्कर्ष एवं इस उत्कर्ष से पुनः ढलती हुई दिखती है। अतः छायावाद के विकास की दृष्टि से सन् 1920 से 1940 के मध्य की अवधि को छायावादी कविता का काल माना जा सकता है और इसे 'छायावाद' की संज्ञा दी जाती है। छायावादी काव्य की इस कालावधि के अंतर्गत वैसे तो कई काव्य प्रवृतियाँ प्रवहमान थीं और उनमें से कुछ अपना स्वतंत्र अस्तित्व भी रखती थीं; फिर भी, प्रमुख प्रवृत्ति छायावाद की ही रही। अतः इस कालावधि में प्रवर्तित अन्य प्रवृत्तियाँ प्रमुख स्वर के रूप में अपनी कोई विशिष्ट पहचान नहीं बना पाईं। वैसे छायावाद के संबंध में विद्वानों की एकमत राय बहुत बाद में ही कामय हो पाई है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस कविता को नई धारा का तृतीय उत्थान कहा है। उन्होंने भारतेंदु युग और द्विवेदी युग नामकरण तो किया पर छायावाद युग का नाम नहीं दिया। इसका एकमात्र कारण यह था कि आचार्य शुक्ल इस युग की नवीनधारा की सभी कविताओं को छायावाद से परिपूर्ण नहीं मानते थे।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने तत्कालीन नई कविता की तीन शाखाएँ स्वीकार कीं - (1) स्वच्छंदतावाद (2) छायावाद और (3) रहस्यवाद। शुक्ल जी स्वयं छायावाद को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहस्यवाद का पर्याय मानते थे । सन् 1928 में उन्होंने अपने ग्रंथ 'काव्य में रहस्यवाद' में छायावाद को रहस्यवाद ही माना है। लेकिन 'हिंदी साहित्य का इतिहास' के संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण (पृ. 615-16) में उन्होंने अपनी पूर्वधारणा में यत्किंचित परिवर्धन करते हुए अपना मत व्यक्त किया है कि ''छायावाद' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में जहाँ उसका संबंध काव्यवस्तु से होता है अर्थात् जहाँ कवि उस अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलंबन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार की व्यंजना करता है। इस रूपात्मक आभास को पश्चिम में छाया (फेंटास्माटा) कहते थे। इसी से बंगाल में ब्रह्म समाज के बीच उक्त वाणी के अनुकरण पर जो आध्यात्मिक गीत या भजन बनते थे, छायावाद कहलाने लगे। धीरे-धीरे यह शब्द धार्मिक क्षेत्र से वहाँ के साहित्य क्षेत्र में आया और फिर रवींद्रबाबू की धूम मचने पर हिंदी के साहित्य के क्षेत्र में भी प्रकट हुआ। छायावाद शब्द का दूसरा प्रयोग काव्यशैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में हैं। हिंदी में छायावाद शब्द का जो व्यापक अर्थ रहस्यवाद की रचनाओं के अतिरिक्त और प्रकार की रचनाओं के संबंध में भी ग्रहण हुआ, वह इसी प्रतीक शैली के अर्थ में। छायावाद का सामान्यत: अर्थ हुआ- प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन। इस शैली के भीतर किसी वस्तु या विषय का वर्णन किया जा सकता है।''

शुक्ल जी के इस कथन से तो छायावाद के आरंभ के संबंध में कुछ भी कहने के लिए गहन शोध की और अधिक आवश्यकता सिद्ध हो जाती है। उन्होंने इस वाद के आरंभ के संबंध में स्वीकार किया है कि वह पहले बंगाल के साहित्य में नए ढंग की रहस्यात्मक कविता के लिए प्रयुक्त हुआ और वहीं से हिंदी में आया। कुछ विद्वान शुक्ल जी के इस मत का खंडन करते हुए तर्क देते हैं कि बंगाल के साहित्य में 'छायावाद' शब्द कभी प्रयुक्त हुआ ही नहीं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने ग्रंथ 'हिंदी साहित्य'(पृ. 460-61) में छायावाद के संबंध में लिखा है कि ''इस नवीन प्रकार की कविता को किसी ने छायावाद नाम दे दिया है। यह शब्द बिल्कुल नया है। यह भ्रम ही है कि किस प्रकार के काव्यों को बंगला में छायावाद कहा जाता था और वहीं से यह शब्द हिंदी में आया है। छायावाद शब्द केवल चल पड़ने के जोर से ही हिंदी में स्वीकारणीय हो सका है।''

इस तरह से आज भी यह शोध का विषय है कि हिंदी में छायावाद शब्द के प्रयोग की पहल किसने की। जैसा कि पहले उल्लिखित है कि सन् 1920 में श्री मुकुटधर पांडेय ने जबलपुर से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'श्री शारदा' के चार अंकों में 'छायावाद' नामक अपना निबंध प्रकाशित कराया था। इसी विषय पर उनका एक निबंध सन् 1921 ई. में सरस्वती में भी प्रकाशित हुआ था। श्री पांडेय के निबंध से ज्ञात होता है कि सन् 1920 से पहले छायावाद शब्द यत्र-तत्र प्रयुक्त होता रहा था लेकिन उसे एक आंदोलन का स्वर देने वाले शब्द के रूप में सर्वप्रथम श्री मुकुटधर पांडेय ने प्रयुक्त किया। श्री पांडेय ने 'छायावाद' शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के 'मिस्टिसिज्म' शब्द के अर्थ में किया था। उस समय तक अंग्रेजी के 'रोमांटिसिज्म' शब्द के लिए हिंदी में कोई शब्द प्रचलित नहीं हुआ था। अत: श्री मुकुटधर पांडेय ने अंग्रेजी की रोमांटिक कविता को ध्यान में रखकर उसे ही मिस्टिक कविता कहने के आधार पर उसी का हिंदी अनुवाद छायावाद किया था। श्री पांडेय ने अपने निबंध 'छायावाद' में लिखा है कि ''अंग्रेजी या किसी भी पाश्चात्य साहित्य अथवा बंग साहित्य की वर्तमान साहित्य की कुछ भी जानकारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखने वाले तो सुनते ही समझ जाएँगे कि यह शब्द मिस्टिसिज्म के लिए आया है।'' श्री पांडेय जी के इस कथन से स्पष्ट होता है कि उस काल के साहित्य मनीषियों को अंग्रेजी के रोमांटिसिज्म और मिस्टिसिज्म शब्दों में कोई अंतर आभासित नहीं हुआ तथा इन शब्दों का ही अर्थबोध कराने के लिए छायावाद शब्द प्रयोग में आया।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के 'हिंदी साहित्य का इतिहास' ग्रंथ पर इस दृष्टि से दृष्टिपात करें तो वहाँ 'स्वच्छंदतावाद' जैसा शब्द मिलेगा। उन्होंने तो 'स्वच्छंदतावाद' और 'छायावाद' में भिन्नता भी स्थापित की। छायावाद के उन्होंने दो रूप—अभिव्यंजना वैचित्र्य वाला छायावाद और आध्यात्मिक अनुभूति वाला छायावाद माने। आध्यात्मिक अनुभूति वाले छायावाद को उन्होंने 'रहस्यवाद' माना।

अंग्रेजी की रोमांटिक कविता और हिंदी की छायावादी कविता के अंतर के संबंध में पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि अंग्रेजी की रोमांटिक कविता और हिंदी की छायावादी कविता दोनों एक नहीं हैं। दोनों में दो भिन्न देशकाल विद्यमान हैं। दोनों में व्यक्तिवाद की प्रधानता की समानता है। जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा आदि ने छायावाद और रहस्यवाद को दो भिन्न प्रवृत्तियाँ मानते हुए भी स्वीकार किया है कि छायावाद व्यापक काव्य प्रवृत्ति है और रहस्यवाद उसी का एक अंग या शाखा है। आचार्य नंद दुलारे बाजपेयी (साहित्य तथा अन्य निबंध, पृ. 101-102) ने कुछ भिन्न मत प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि ''इस प्रकार आधुनिक छायावादी और रहस्यवादी काव्य रचनाएँ स्वच्छंदतावाद की ही विभिन्न शैलियाँ हैं। इन्हें स्वच्छंदतावाद से पृथक देखने की आवश्यकता नहीं है। यदि हम तीनों वादों का अंतर करना ही चाहें तो कह सकते हैं कि स्वच्छंदतावाद नवयुग की समग्र प्रेरणाओं का प्रतिनिधित्व करनेवाला काव्य रूप है जिसमें परंपरागत काव्यधारा और काव्योपकरणों के विरुद्ध विद्रोही उपकरणों की प्रधानता है। इसमें नई भावसृष्टि और नए अलंकरण हैं, बहिर्मुखता के स्थान पर अंतर्मुखी प्रयाण है, प्रकृति का निसर्गजात आकर्षण है, शब्दावली में नवीन संगति है। छायावादी काव्य में ही यह तत्व हैं। परंतु एक तत्व की प्रधानता के कारण इसका यह नाम पड़ा है वह इसकी अंतर्निहित आध्यात्मिकता है। समस्त छायावादी काव्य में इस प्रकार का आध्यात्मिक संस्पर्श हो, ऐसा आवश्यक नहीं है। परंतु छायावादी काव्य में यह संस्पर्श मूलतः विद्यमान माना जाता है। इस सीमित परिभाषा में हिंदी का समस्त छायावादी काव्य नहीं आता। परंतु एक बार नाम पड़ जाने पर गुणों के न रहने पर भी नाम की स्थिति बनी रहती है। यही बात छायावादी काव्य के संबंध में भी घटित हुई है।''

छायावाद की भावभूमि के पीछे आधार स्वरूप भूमिका प्रदान करके में किसी हद तक भारतेंदु काल भी है। छायावाद के जिस स्वच्छंदतावाद की बातें आज हम करते हैं वह स्वच्छंदतावाद अपनी आधारभूमि भारतेंदु युग में ही बना चुका था अर्थात् बीज निर्मित हो चुका था। आवश्यकता थी - उर्वरा भूमि एवं समुचित वातावरण की ताकि वह बीज उर्वराभूमि और उपयुक्त वातावरण का सुष्ठ संयोग पाकर अंकुरित होकर वटवृक्ष बन सके और ऐसा वातावरण थोड़े समय के बाद उसे मिल ही गया। इस विद्रोही भावना का यद्यपि सीधा और सहज विकास तो संभव नहीं था। यदि हम भारतेंदु युग के उत्तराधिकारी युग द्विवेदी युग पर सरसरी नजर भी डालें तो भी स्पष्ट हो जाएगा कि भारतेंदु युग में जो लहर अपना वेग धारण कर चुकी थी, वह द्विवेदी युग की विशुद्धतावादी और मर्यादावादी मानदंडों के कारण मंद अवश्य हुई, हालाँकि उसका वेग आमूलचूल थमा नहीं क्योंकि हम उस युग अर्थात् 1900 से 1920 ई. की कालावधि में भी देखते हैं कि श्रीधर पाठक,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बदरीनारायण भट्ट, मुकुटधर पाण्डेय, रायकृष्ण दास, मैथिलीशरण गुप्त और जयशंकर प्रसाद ने इस स्वच्छंदतावादी प्रवृति को भरपूर प्रश्रय दिया। शनै-शनै इस प्रवृत्ति ने परिवर्तित स्वरूप धारण किया और इस परिवर्तित स्वरूप या नवीन ढले हुए रूप को ही छायावाद की संज्ञा दी जाने लगी।

यदि 1920 ई. से दो वर्ष पहले तथा उसके बाद की कविता पर दृष्टिपात करें तो यह अवश्य आभासित होगा कि इस काल में कविता के प्रधान स्वर में जबर्दस्त रूप से तेजी आई। हालाँकि इस समय तक कविता के इस बदलते स्वर के लिए कोई अलग नाम नहीं दिया गया था। अत: यहाँ एक बात अवश्य सिद्ध होती है कि हिंदी में छायावाद जैसी काव्यधारा यकायक उत्पन्न नहीं हुई अपितु उसकी भावभूमि एवं आधारभूमि के बीज पुनरूत्थानवादी कविता में थे और उन बीजों को समुचित परिवेश मिल जाने पर स्वरबद्ध होकर उभरने का मौका मिला जिसमें अन्य तत्व, स्थितियाँ, परिस्थितियाँ एवं प्रभाव भी किसी न किसी रूप में जवाबदार अवश्य थे।

एक बात और भी है जिस पर प्रकाश डालना प्रस्तुत संदर्भ में सर्वथा आवश्यक एवं युक्तियुक्त होगा। छायावाद न तो अचानक 1920 में एक साथ कहीं से आ टपका और न उसका रूप 1920 से 1940 की कालावधि में एक जैसा ही बना रहा। अत: इस अवधि में उसका क्रमश: बीजवपन, पल्लवन एवं परिपक्वन हुआ। 1940 तक आते-आते इस काल के कवि नई काव्यधारा की ओर उन्मुख हो चुके थे अत: एक वाद के रूप में इस समय से नए युग की शुरूआत हुई।

छायावाद के उदयकाल में बद्रीनारायण भट्‌ट, मुकुटधर पांडेय, माखनलाल चतुर्वेदी, पदुमलाल पन्नालाल बख्शी आदि कवियों के नाम विशेष रूप से लिए जा सकते हैं जिन्होंने छायावाद के निर्माण में अपना योगदान दिया है। पं. बदरीनारायण भट्‌ट सन् 1913 ई. के पहले ही भावाभिव्यंजक एवं अनूठे गीतों की रचना करते आ रहे थे। श्री पदुमलाल पन्नालाल बख्शी के भावात्मक गीत सन् 1915-16 के आसपास प्रकाशित हो चुके थे। श्री मुकुटधर पांडेय की रचनाओं में नूतन पद्धति का समावेश देखने को मिलता है। उनकी कविताओं में प्रकृति के प्रति असीम प्यार, रहस्यमय संकेतों का ग्रहण एवं चित्रात्मक भाषा का दर्शन होता है। इन कवियों के माध्यम से काव्यधारा एक विशिष्ट मोड़ ले चुकी थी जिसके संबंध में आचार्य शुक्ल ने लिखा (हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 620) ''हिंदी कविता की नई धारा का प्रवर्तक इन्हीं को - विशेषत: श्री मैथिलीशरण गुप्त और श्री मुकुटधर पांडेय को समझना चाहिए।'' इस तरह, इस युग के पूर्ववर्ती युग द्विवेदी युग में साहित्यिक क्षेत्र में व्याप्त इतिवृत्तात्मकता और नीरसता के प्रति विद्रोही स्वर में एक अलग स्वर की काव्य धारा शनै-शनै आगे गतिशील हुई और इस काव्यधारा को छायावाद कहा गया।

इस संबंध में यह भी जोर देकर कहा जा सकता है कि पं. श्रीधर पाठक, राम नरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पांडेय, पदुमलाल पन्नालाल बख्शी, माखन लाल चतुर्वेदी आदि कवियों ने भी इस काल को दिशा देने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। वैसे इस युग को चोटी पर ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई चार महान कवियों— श्री जयशंकर प्रसाद, श्री सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, श्री सुमित्रानंदन 'पंत' और महादेवी वर्मा ने। मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक आदि कवि खड़ी बोली को काव्य के क्षेत्र में उतार ही चुके थे। प्रसाद ने खड़ी बोली में काव्य लिखकर इसे और अधिक चमक प्रदान की। प्रसाद की नवीन ढंग की रचनाएँ सन् 1913 ई. के आसपास से 'इंदु' में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशित होने लगीं थीं। उनका खड़ीबोली का प्रथम काव्यसंग्रह 'कानन कुसुम' सन् 1913 ई. में प्रकाशित हुआ। प्रसाद की अन्य कृतियाँ भी प्रकाशित हुईं - करुणालय (1913 ई.), प्रेम पथिक (1914 ई.), महाराणा का महत्व (1914 ई.), चित्राधार (1918 ई.) आदि। लेकिन उनका काव्यसंग्रह 'झरना' (1918 ई.) छायावाद के प्रतिष्ठापत्र के रूप में स्वीकार्य हुआ।

प्रसाद जी के छायावादी ढंग के काव्यधरातल पर निराला और पंत जैसे कवियों की कविताएँ प्रकाश में आईं। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने इस संबंध में ठीक ही लिखा है कि (युग और साहित्य, पृ. 185) ''अंतर यह है कि प्रसाद का कंठ खड़ी बोली में खुल चुका था, ये अपना कंठ खोल रहे थे। वैसे निराला की प्रसिद्ध कविता 'जुही की कली' सन् 1916 ई. में लिखी गई थी। इस कविता में जुही की कली और पवन के माध्यम से केलि प्रसंग का वर्णन किया गया है। मुक्तछंद में लिखित इस कविता में प्रकृति को मानवीय संवेदना से युक्त जीवन सत्ता के रूप में चित्रित किया गया है। यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि निराला की प्रारंभिक कविताएँ 'मतवाला' में प्रकाशित हुआ करती थीं; पंत जी का काव्यारंभ 'वीणा' और 'ग्रंथि' से हुआ। 'वीणा' काव्यसंग्रह में पंत जी की सन् 1918-19 की कविताएँ संग्रहीत हैं। 'वीणा' का प्रकाशन सन् 1927 ई. में हुआ। पंत जी का प्रसिद्ध काव्य 'पल्लव' 1926 ई. में छपा जिसकी भूमिका ने हिंदी काव्य में क्रांति का घोष किया। हिंदी में छायावाद के समर्थन और विकास में 'पल्लव' की भूमिका ने वही चमत्कार कर दिखाया जो अंग्रेजी रोमांटिसिज्म के स्वरूप निर्धारण एवं संगठन में वर्ड्सवर्थ की 'लिरिकल बैलेड्स' की भूमिका, कार्लरिज की 'लिटरेरिया बयाग्राफिया', शैली की 'द डिफेंस ऑफ पोइट्री' ने कमाल कर दिखाया। इसीलिए 'पल्लव' की भूमिका को छायावाद का घोषणापत्र भी कहा जा सकता है।

निराला की कविताओं का संग्रह 'अनामिका' सन् 1922 ई. में प्रकाशित हुआ। तत्पश्चात् निराला की उत्कृष्ट रचनाएँ 'परिमल' में समाविष्ट होकर सन् 1929 में छपीं। इसे निराला की कविताओं के प्रतिनिधि संकलन के रूप में स्वीकार किया जाता है। इसके प्रथम खंड में 'यमुना के प्रति', 'प्रिया के प्रति', 'तरंगों के प्रति', 'जलद के प्रति', 'तुम और मैं', 'माया' आदि कविताएँ समाहित हैं। द्वितीय खंड में 'विधवा', 'भिक्षुक', 'संध्यासुंदरी', 'दीन', 'बहू', 'बादलराग' आदि कविताएँ शामिल हैं। तृतीय खंड में 'जुही की कली', 'जागृति में सुप्त थी', 'शेफालिका', 'जागो फिर एक बार', 'महाराज शिवाजी का पत्र', 'पंचवटी प्रसंग' आदि कविताएँ संग्रहीत हैं। 'परिमल' के इस तीसरे खंड में मुक्तछंद की रचनाएँ हैं। साथ ही, परिमल स्वच्छंद प्रवृतियों की घोषणा करता है।

महादेवी वर्मा छायावाद की चौथे स्तंभ के रूप में स्वीकार की जाती हैं। वे काफी बाद में आईं। उनकी कविताओं का प्रथम संग्रह 'नीहार' सन् 1930 ई. में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में उनकी सन् 1923 से 1929 तक की कविताएँ संग्रहीत हैं। उनकी गीतों में आध्यात्म एवं संगीत का सुदंर सुघड़ सुमेल है।

प्रसाद की रचना 'आँसू' का प्रथम संस्करण 1925 ई. में तथा द्वितीय संकरण सन् 1935 ई. में प्रकाशित हुआ। पहले संस्करण में 190 छंद थे जबकि दूसरे में 126 । प्रसाद का 'आँसू' विरह प्रधान उत्कृष्ट काव्य है। 'आँसू' के दूसरे संस्करण के छपने से पहले ही सन् 1927 ई. में 'झरना' का दूसरा संस्करण छपा। सन् 1932 ई. में पंत का 'गुंजन' प्रकाशित हुआ जिसमें उनकी कुछ प्रौढ़ रचनाएँ - 'नौकाविहार', 'एक तारा', 'अप्सरा', 'भावी पत्नी', 'चाँदनी' आदि शामिल थीं। इसके संबंध में डॉ. नगेंद्र (सुमित्रा नंदन पंत, पृ. 106) ने लिखा कि ''गुंजन में पंत जी की कल्पना हल्के तितलियों के पंख लेकर उड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उसमें पंखों की सरसराहट नहीं है, जो अत्यंत सजीवता की द्योतक है। उसके रंग भी इतने चटकीले न होकर सिल्किन हो गए हैं।''

महादेवी वर्मा के काव्यसंग्रह 'रश्मि' का प्रकाशन सन् 1932 ई. में हुआ तथा प्रसाद का काव्यसंग्रह 'लहर' 1933 ई. में छपा। लहर में प्रसाद की संवेदनाएँ प्रगाढ़ होने लगीं थीं और ये ही संवेदनाएँ और अधिक प्रगाढ़ होकर सर्वोच्च शिखर पर पहुँचकर सन् 1935 ई. में 'कामायनी' महाकाव्य के रूप में प्रकट हुईं। 'कामायनी' महाकाव्य छायावाद की सर्वोत्कृष्ट एवं महान उपलब्धि है। इसके एक वर्ष पहले पंत की 'ज्योत्सना' सन् 1934 ई. में तथा महादेवी वर्मा की 'नीरजा' सन् 1934 में प्रकाशित हुईं। निराला की 'गीतिका' सन् 1936 ई. में प्रकाशित हुई तथा 'अनामिका' का नवीन संस्करण सन् 1938 ई. में निकला। 'गीतिका' में निराला का गीतकार रूप पूर्णतः उभरकर सामने आया जिसमें 'सरोज स्मृति' (सन् 1935 ई.), 'राम की शक्तिपूजा' (सन् 1936 ई.) जैसी प्रौढ़ रचनाएँ समाहित हैं। निराला की काव्य रचना 'तुलसीदास' का प्रकाशन सन् 1938 ई. में हुआ। महादेवी का काव्यसंग्रह 'सांध्यगीत' सन् 1936 ई. में छपा तथा 'दीपशिखा' सन् 1940 में। पंत का 'युगांत' सन् 1936 ई. में प्रकाशित हुआ। इससे छायावाद का अंत माना जाता है। 'युगवाणी' सन् 1939 ई. में तथा 'ग्राम्या' 1940 ई. में प्रकाशित हुईं। इसके बाद छायावादी काव्यधारा क्रमश क्षीण होती हुई लुप्त हो गई।

सन् 1940 ई. के पश्चात् हिंदी काव्यधारा में क्रमशः एक नया मोड़ आया और प्रगतिवाद की जड़ें जमनी शुरू हो गईं। इस दृष्टि से 'युगवाणी' को प्रथम प्रगतिवादी काव्य कहा जा सकता है। निराला की रचना 'तोड़ती पत्थर', 'भिक्षुक' आदि प्रगतिवादी स्वर की रचनाएँ हैं। निराला की 'अणिमा' सन् 1943 ई. में छपी। निराला का व्यंग्य काव्य 'कुकुरमुत्ता' सन् 1948 ई. में, 'वेला' 1943 ई. में और 'नये पत्ते' सन् 1946 ई. में प्रकाशित हुए। रामकुमार वर्मा की 'अंजलि', 'अभिशाप', 'रूपराशि', 'चित्रलेखा' आदि छायावादी ढंग की रचनाएँ हैं। बच्चन के काव्य 'निशा निमंत्रण', 'एकांत संगीत', 'मधु कलश' आदि में स्वच्छंद प्रवृत्तियों की झाँकी मिलती है। रामधारी सिंह 'दिनकर' की 'रेणुका', 'रसवंती' छायावादी रचनाएँ हैं।

इस तरह, छायावाद युग समापन के कगार पर पहुँच गया और नए युग का सूत्रपात हो गया। प्रसाद के असामयिक निधन से छायावाद को गहरा आघात लगा। पंत और निराला समय को ताड़कर प्रगतिशील स्वर की रचनाएँ लिखने लगे। उत्तर छायावाद युग में प्रगतिवाद की भावभूमि तैयार हुई तथा स्वर में भी प्रखरता आने लगी। डॉ. शिवकुमार मिश्र ने अपने शोधग्रंथ 'नया हिंदी काव्य' के पंचम अध्याय में प्रगतिवादी काव्य पर विचार करते हुए लिखा है कि राजनैतिक जागरूकता, साम्राज्यवादी प्रचारात्मकता, सक्रिय एवं क्रांतिकारी रोमांटिसिज्म, सोद्देश्यता, उपनिवेशवादी और पूँजीवादी व्यवस्था एवं शोषण का विरोध तथा समाजवादी यथार्थ का स्पष्ट चित्रण, शिल्प की तुलना में वस्तु की महत्ता का स्वीकरण, काडवेल के सामूहिक भाव के रूप में साधारणीकरण का ग्रहण, नैतिक-अनैतिक का मान्य सिद्धांतों के आधार पर सतर्क बोध, सामाजिक एवं राजनीतिक क्रांति के लिए साहित्य का हथियार के रूप में प्रयोग, व्यक्तिवादी, अहंवादी, यौनवादी साहित्य का तिरस्कार, धर्म और ईश्वर की अवज्ञा, किसान-मजदूर को विशेष सहानुभूति प्रदान करते हुए सीमित अर्थ में मानवतावाद का समर्थन, इतिहास के प्रति सजगता, बुद्धिवादिता, रूढ़ि प्रयोग और अर्थप्रधान भौतिकवादी मूल्यों की प्रतिष्ठा तथा लोकसाहित्य के प्रति उन्मुखता प्रगतिवादी काव्य की प्रमुख विशेषताएँ कही जा सकती हैं।

•

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुजरात में हिन्दी कहानी की पहचान

-डॉ. सूर्यदीन यादव

गुजरात की पूज्य भूमि पर आज जहाँ मैं खड़ा हूँ, मेरा उत्तरदायित्व है कि एक लेखक होने के नाते यहाँ के साहित्य की जान पहचान रखूँ। गुजरात में हिन्दी से गुजराती और अन्य भाषाओं के अनेक लेखक विभिन्न साहित्यिक विधाओं में लिख रहे हैं। अनेक लेखकों की अनेकानेक अमूल्य उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। लेखकों में एक स्पर्धा सी चल रही है। गुजराती परिवेश में हिन्दी का बोलबाला है। ऐसे मिले-जुले विविध भाषाभाषी परिवेश में हिन्दी भाषा का स्थान सर्वोपरि रहा है। गुजराती और हिन्दी भाषी लेखक दोनों हिन्दी भाषा में लेखन कार्य कर रहे हैं।

जहाँ तक कहानी लेखन का सवाल है, उसका प्रारम्भ तो बहुत पहले हो चुका था। मैं सन् 1975 से गुजरात में रह रहा हूँ और तब से देख रहा हूँ कि हिन्दी कहानी लेखकों की एक जमात गुजरात प्रदेश में सक्रिय रूप से लेखन प्रक्रिया में दत्तचित्त हैं। गुजराती भाषा में लिखी गई कहानियों का भी हिन्दी भाषा में अनुवाद हुआ है। उस लेखन प्रक्रिया में शामिल मैं अपने आसपास के लेखकों और उनकी बहुचर्चित कहानियों को देखता पढ़ता हूँ तो पाता हूँ कि गुजरात में हिन्दी कहानी दिनोंदिन विकसित होती रही है। हिन्दी कहानी एक ऐसी सर्वप्रिय विधा है कि वह अनायास ही लिखी जा रही है।

साहित्य व्यक्ति और समाज का दर्पण होता है। कहानी साहित्य की ही एक मूलभूत विधा हैं। कहानी के लघु कलेवर में व्यक्ति और समाज का विशालकाय स्वरूप एवं सम्पूर्ण परिदृश्य रूपायित होने की अपेक्षा किसी प्रसंग या घटना का आंशिक एवं प्रमाणिक यथार्थ चित्रण किया जाता है। जीवनानुभूति की अभिव्यक्ति का सरल एवं सहज माध्यम कहानी विधा होती है। इसलिये मैंने सन् 1969 में कहानी लिखना प्रारम्भ किया। लेखक स्वयं को व्यक्त करने के लिये नहीं लिखता है। मेरी कुछ कहानियाँ पढ़ने से ऐसा लग सकता है कि वह लेखक के ही व्यक्तित्व का चित्रांकन है। दरअसल लेखक किसी पात्र विशेष के रूप में आ सकता है किन्तु उस पात्र विशेष के जैसे समाज में अनेक पात्र होंगे। इसलिये कोई भी कहानी किसी एक या विशिष्ट व्यक्ति का जीवन वृतांत न होकर समाज के अनेक पात्रों का चित्रांकन व चरित्रांकन होती है। हर व्यक्ति के जीवन में कोई न कोई कहानी बनती-घटती रहती है। लेखक उसे शब्द रूप आकार देकर पाठकों तक पहुँचाता है। इसलिये कोई भी कहानी किसी की व्यक्तिगत कथा न होकर समग्र के जीवन को किसी न किसी रूप में स्पर्श करती है। कहानी एक वृक्ष सी होती है। वृक्ष का हर अंग-प्रत्यंग प्रत्येक व्यक्ति एवं जीव सृष्टि के लिये भिन्न-भिन्न रूप से उपयोगी होता है। पेड़ का तना, छाल, शाखा, डाल, टहनी, लौंची, पत्ती, फूल, फल और फल का दाना, फल की छाल, फल का बीज, फल का रेशा, फल का रस, पत्ती का रस, पेड़ की छाया, फलों की गंध, स्वाद इत्यादि प्रत्येक अंगांग, अंशांश या पूर्णांश रूप से किसी न किसी रूप में हर व्यक्ति एवं प्रत्येक प्राणी के लिये उपयोगी होता है। ठीक उसी प्रकार कहानी किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत न होकर वृक्ष की तरह सर्व एवं परमार्थ के लिये होती है।

जीवनानुभूति एवं सत्य को अलग करके देखना दुरूह होता है। जहाँ अनुभूति चेतना है वहाँ साथ है। उस अनुभूति चेतना एवं सत्य को साहित्य में ढालने की प्रक्रिया हर लेखक की भिन्न-भिन्न हो सकती है। लेखन लेखक की दृष्टि पर निर्भर होता है। कुछ लेखक मनोवैज्ञानिक तौर पर समाज के सत्य को रूपायित करते हैं और कुछ लेखक प्रत्यक्ष रूप से कथा को चित्रित करते हैं। यदि मैं अपनी बात करूँ तो वास्तव में यथार्थवादी दृष्टिकोण से ही व्यक्ति और समाज को देखता हूँ। अपनी यथार्थवादी प्रक्रिया द्वारा ही अनुभूत सत्य को साहित्य कृति में तब्दील करता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गरीबी हटाओ आन्दोलन शायद कभी चलाया गया था। मैं नहीं जानता कब ? लेकिन मेरी कहानियों में जनान्दोलन अवश्य दिखाई पड़ता है। हालाँकि वह आन्दोलन प्रेमचंद युग से ही प्रारम्भ हो चुका था। उस तनावी जनान्दोलन का परिणाम है निम्नवर्गीय चेतना। अब हर व्यक्ति अपने मूल्यों को पहचानने लगा है। आज प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारों को पाना चाहता है। उसे स्वतंत्रतान्दोलन कह सकते हैं, पर ब्रिटिशकालीन ही क्योंकि अंग्रेजों के चले जाने के बाद आज भी वह जनान्दोलन जारी है।

रचना किसी वाद-विवाद के घेरे में फँसनी नहीं चाहिए। साहित्य एक स्वतंत्र धारा है। मैं उसका पक्षपाती हूँ। मैं किसी वाद विवाद में नहीं मानता हूँ। मैं एक स्वतंत्र मुक्त व्यक्तित्व हूँ। जो यथार्थवाद मेरी रचनाओं में आता है वह दरअसल मेरी अनुभूतियों का चित्रण है । कोई वाद विशेष मेरी कहानियों में नहीं है। मैं सर्व वादों की उपेक्षा नहीं करता पर उनकी छाया अपनी कहानियों पर पड़ने नहीं देता। कहानी किसी विशेष प्रवृत्ति को लक्षित नहीं करती है। वह गाँव समाज का चित्रण होती है और मेरी जीवनानुभूतियों से जुड़ी होती है जो विशेषकर मानवीय मूल्यवादी प्रवृत्तियों को अनुलक्षित करती है। कपोलकल्पित मनोरंजनात्मक कहानियाँ मैं नहीं लिखता। जो मेरे अनुभव हैं वही कहानी का रूप धारण कर लेते हैं । मैं अनुभूति सत्य से कट नहीं पाता हूँ। सन् 1969 में ही मैंने कहानी लिखना प्रारम्भ किया था। 1977 में मैंने एक ग्रामीण कहानी 'अपने आदमी' लिखी थी। वह कहानी प्रो. करुणेश शुक्ल द्वारा संपादित पत्रिका 'कान्यकुब्ज संवाद' में सन् 1983 में प्रकाशित हुई। वैसे मैं गुजरात में सन् 1975 में ही पदार्पण कर चुका था। मैं गुजरात के लेखकों से धीरे-धीरे परिचित हो रहा था। 'अपने आदमी' कहानी के प्रकाशित होने पर लोगों ने मेरी कहानियाँ पढ़ीं और मैंने कई लेखकों की कहानियाँ पढ़ी। मेरी जानकारी के अनुसार गुजरात में कहानी लेखन का प्रारम्भ डॉ. रामदरश मिश्र के आगमन से हुआ था। इसका मतलब यह नहीं कि मिश्र जी के आने के पहले गुजरात में हिन्दी कहानी नहीं लिखी जाती थी। दरअसल रामदरश मिश्र के गुजरात में आने पर कहानी लेखन और प्रकाशन का दौर जोर पकड़ता गया जो आज तक चलता रहा है। आज तो अनेक कहानीकार कहानियाँ लिख रहे हैं। गुजरात में हिन्दी कहानी अपनी महत्वपूर्ण पहचान बना चुकी है। गुजराती भाषा का प्रभुत्व होने एवं हिन्दी में प्रकाशन की तंगी होने से शायद ज्यादातर लेखकों की कहानियाँ अन्य प्रान्तों में प्रकाशित होती हैं। किन्तु पिछले कुछ वर्षों से कुछ संस्थाओं के सक्रिय सहयोग से गुजरात में हिन्दी की पुस्तकें प्रचुर मात्रा में प्रकाशित होने लगी हैं। गुजरात की हिन्दी कहानी मनोरंजन की भूमिका से काफी ऊपर उठ चुकी है। गुजरात की कहानी अब एक विशिष्ट लोकप्रिय, साहित्यिक विधा का स्थान प्राप्त कर चुकी है। गुजरात की हिन्दी कहानियों पर शोध-कार्य आवश्यक है। कहानी को कोई एक दशा और दिशा नहीं होती है क्योंकि हर लेखक की दृष्टि बहुमुखी होती है। सभी लेखक अपने-अपने काल, परिवेश और अनुभव के अनुसार कहानियाँ लिखते हैं।

प्रेमचंद युग की तरह आज की कहानी प्रगतिवादी दिशा की ओर अग्रसर रही है। आज मूल्यवान एवं चेतनावादी कहानियाँ लिखी जा रही हैं, जो काफी सशक्त एवं जीवंत होती हैं। अन्य विधा की अपेक्षा हिन्दी कहानी को कम महत्व दिया जा रहा है--इसे मैं नहीं मानता। रचना किसी भी विधा की हो -उसे महत्व मिलना या न मिलना पाठक पर निर्भर होता है। रचनाकार स्वाभिव्यक्ति द्वारा समग्र समाज को व्यक्त करना चाहता है। एक विधा दूसरी विधा की स्पर्धी नहीं हो सकती। लोग भले ही कविता में अधिक लिखते हों, पर उन्हें पढ़ते कितने लोग हैं। कहानियाँ अधिक लोग पढ़ते हैं। आज तो कहानियों का अधिक बोलबाला है। लघु कथाएँ भी खूब लिखी जा रही हैं। उपन्यास, नाटक, कविता में भी तो कहानी होती है। इसलिये कहानी का महत्व सदा बढ़ता ही जा रहा है।

●●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्तिबोध की तार सप्तक की कविताओं में राष्ट्रीय चेतना

- श्रीमती चंदा मोदी

राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में तारसप्तक की सप्तक परंपरा की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका रही है। तारसप्तक, दूसरा सप्तक और चौथा सप्तक के प्राय: समस्त मालवा संबद्ध सप्तकीय कवियों की वाणी ने आग और अंगार की ज्वालाओं को प्रज्ज्वलित किया है। इस चेतना की शक्ति ने मालवा की ही नहीं वरन् देश की आर्थिक, सामाजिक और राष्ट्रीय स्तर की राजनीतिक विडम्बनाओं को पूरी निष्ठा और ईमानदारी के साथ मजबूत बनाया। व्यंग्य की पैनी और धारदार व्यंजनाओं ने युग परिवेश को समझने-समझाने में अच्छी-खासी मदद की है।

राष्ट्रीय चेतना की पकड़ की दृष्टि से मालवा संबद्ध सप्तकीय कवि किसी न किसी छोर पर जुझारू संघर्ष के लिए कटिबद्ध रहे। स्वार्थ, शोषण, असमानता और परस्पर विद्वेष की भयंकर आँधियों के बीच कवियों की राष्ट्रीय चेतना प्रखर बनी जिसकी ज्वलंत कहानी 'तारसप्तक' परंपरा की जुबानी मिलती है। अत: तारसप्तक, दूसरा सप्तक, चौथा सप्तक में मालवा के समाविष्ट कवियों की कविताओं की समीक्षा औचित्यपूर्ण प्रतीत होती है।

तारसप्तक में संकलित सप्तकीय कवियों में मुक्तिबोध की कविताओं को पहला क्रम प्राप्त है। संपादक का जो भी उद्देश्य इसमें रहा हो, परंतु किसी संकलन में प्रथम स्थान का अपना एक अर्थ तो है ही। इस दृष्टि से अज्ञेय का कथन अवलोकनीय है - ''कवियों का क्रम किसी हद तक आकस्मिक है, जहाँ वह इच्छित है, वहाँ उसका उद्देश्य यही कहा है कि कुल सामग्री को सर्वाधिक प्रभावोत्पादक ढंग से उपस्थित किया जाए।'' (तारसप्तक, पृ. 13) तारसप्तक को सर्वाधिक प्रभावोत्पादक बनाने के लिए मुक्तिबोध को पहला स्थान देकर संपादक ने भी कवि के साथ-साथ मालवा को भी स्वीकार किया है, इसमें संदेह नहीं रह जाता। तारसप्तक में मुक्तिबोध की जिन कविताओं को प्रकाशन का अवसर मिला उनमें-आत्मा के मित्र मेरे, दूरतारा, खोल आँखें, अशक्त, मेरे अन्तर, मृत्यु और कवि, नूतन अहं, विहार, पूँजीवादी समाज के प्रति, नाश देवता, सृजनक्षण, अन्तर्दर्शन, आत्मसंवाद, व्यक्तित्व और खण्डहर, मैं उनका ही होता, हे महान् आदि कविताएँ संकलित हैं। मुक्तिबोध सच्चे अर्थों में देशभक्त थे। उनकी कविताओं में राष्ट्रीय चेतना का अद्भुत मिश्रण है। कवि आत्मा के शाश्वत स्वरूप की राष्ट्रनिर्माण में विशिष्ट भूमिका अनुभव करके 'आत्मा के मित्र मेरे' जैसी रचना की सृष्टि की थी।

आत्मनिर्भरता और व्यक्ति के चारित्रिक गुणों से किसी राष्ट्र का भव्य प्रसाद शीश उठ सकता है, मुक्तिबोध के कवि ने इस रहस्य को बहुत पहले ही समझ लिया था-

''अपनी व्यक्तिमत्ता के सहारे जो चले हैं प्राण ।
उनको कौन देता है । अचल विश्वास का वरदान !
उनको कौन देता है प्रखर आलोक
खुद ही जल ? / कि जैसे सूर्य।'' (तारसप्तक, पृ. 11)

'दूरतारा' नामक कविता में, ईश्वरीय सत्ता और मानव से कवि का अटूट विश्वास उद्घाटित होता है -

''वह छिपा प्रत्येक उर में
प्रति हृदय के कल्मषों के बाद
जैसे बादलों के बाद भी है शून्य नीलाकाश
उसमें भागता है एक तारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
 130976

जो कि अपने ही प्रगति-पथ का सहारा
जो कि अपना ही स्वयं बन चला चित्र
भीतिहीन विराट पुत्र
इसलिए प्रत्येक मनु के पुत्र पर विश्वास
करना चाहता हूँ।'' (वही, पृ. 12-13)

130976

'खोल आँखें' कविता की रचना कवि के जागरूक होने का परिचायक है, जहाँ कवि विकासोन्मुख भारत के बढ़ते कदमों के प्रति अटूट अनुराग का भाव लिए हैं -

''जो नई चिनगारियाँ / नव स्वप्न को आलोक ले
उत्पन्न होती जा रहीं / उन सबलतम तीव्र कोमल देश की
चिनगारियों में जो खिले हैं स्वप्न रक्तिम / देख ले जी भर उन्हें तू।''

मुक्तिबोध ने साहस, संकल्प और निश्चय को न थकने वाली शक्ति के रूप में ग्रहण किया है। 'मेरे अन्तर' कविता का स्वर इसी सत्य को व्यक्त करता है -

''पर उसके मन में बैठा जो समझौता कर सका नहीं
जो हार गया, यद्यपि अपने से लड़ते-लड़ते थका नहीं।''

मानव के आत्मविश्वास और उसकी संवेदनशीलता पर कवि को गर्व है। राष्ट्र निर्माण के मार्ग में आने वाले अंधविश्वासों का दमन कवि को प्रिय है और मानव मन की संकल्प शक्ति का वह पुजारी है, जो राष्ट्र के स्वाभिमान की रक्षा में सतत् सहायक है -''उसने ईश्वर संहार किया पर निज ईश्वर पर स्नेह किया।

स्फुरणा के लिए स्वयं को ही नव स्फूर्ति स्रोत का ध्येय किया।
वह आज पुनः ज्योतिष्कण हित / धन पर अविरत करती प्रहार,
उठते स्फुलिंग / गिरते स्फुलिग / उन ज्योतिक्षणों में देख लिया
करता वह सत्य महदाकार।

कवि मुक्तिबोध 'मृत्यु और कवि' शीर्षक कविता में जीवन की क्षणभंगुरता को दर्शाता हैं। कवि की मान्यता है कि मृत्यु से भय खाना कायर पुरुषों का काम है। राष्ट्र के सच्चे योगी तो मृत्यु की चुनौती को न केवल स्वीकार करते हैं, अपितु विरोधों, अभावों और पाखण्डों के घोर अंधकार को चीरने के संकल्प में एकलव्य जैसे जुटे रहते हैं। क्योंकि वे जनते हैं कि मृत्यु तो अवश्यंभावी है। उससे जूझना ही सच्ची शूरवीरता है। जैसे घनघोर बादल भी कट-छट जाते हैं। काला स्याह बादल भी स्वयं आकाश नहीं बन सकता और नीला आकाश तो नीला ही रहता है, ठीक उसी प्रकार कष्ट आते हैं और चले जाते हैं। सच्चा वीर उनसे घबराता नहीं। अतः जीवन क्षणभंगुर होते हुए भी उससे निराश न होना ही साहस है - ''बहुत संकुचित छोटा घर है, / दीपालोकित फिर भी धुँधला, / वधू मूर्च्छिता, पिता अर्धमृत, दुखिता माता स्पन्दनहीना,/ घनी रात, बादल रिमझिम है, / दिशा मूक कवि का मन गीला। यह सब क्षणिक, क्षणिक जीवन है, / मानव जीवन है क्षणभंगुर।''

इसी कविता के माध्यम से कवि विरोधी परिस्थिति में भी अडिग, अकम्प डटे रहने की अद्भुत प्रेरणा भी देता हैं। ''इस वीभत्स प्रसंग में रहो तुम अत्यन्त स्वतंत्र निराकुल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भ्रष्ट न होने दो युग-युग की सतत साधना महाराधना।
इस क्षण भर के दुःख भार से रहो अविचलित रहो अचंचल।
अन्तर्दीप के प्रकाश में विनत-प्रणत आत्मरथ रहो तुम।
जीवन के इस गहन अतल के लिए मृत्यु का अर्थ कहो तुम।''

निराश और हताश अवस्था से ऊपर उठने की कवि प्रेरणा देते हुए कहता है -

''सृजनशील जीवन के स्वर में गाओ मरणगीत तुम सुन्दर।''

कवि की मान्यता और विश्वास है कि खण्डहरों में भी जीवन का भव्य भवन खड़ा किया जा सकता है। अत: विध्वंस की छाती पर निर्माण करने की ललक जागृत करने की कवि की आकांक्षा भी देखने योग्य है।

''ज्योतित हो मुख नभ आशा से, जीवन की गति, जीवन का स्वर।''

कवि ने 'नूतन अहं' नामक कविता में वर्तमान युग के समाज की संकीर्ण, स्वार्थी और दंभी मन:स्थिति को लक्ष्य करके व्यंग्य के स्वर में कहा है -

''किन्तु आज लघु स्वार्थों में घुल, क्रंदन विह्वल,
अन्तर्मन यह टार रोड के अन्दर नीचे बहने वाली गटरों से भी
है अस्वच्छ अधिक ।''

वर्तमान समाज में आर्थिक और सामाजिक खाई का अन्तर इतना अधिक बढ़ गया है कि वर्ग संघर्ष की आग अन्दर ही अन्दर धुआँ दे उठी है। कवि मुक्तिबोध पूँजीपतियों के हृदयहीन शोषण के शिकार शोषित वर्ग के प्रति जहाँ सहानुभूति लिए हैं, वहीं पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति कवि के मन में भयंकर आक्रोश और क्रांति के दावानल सुलग रहे हैं। अपनी कविता 'पूँजीवादी समाज के प्रति' में कवि का आक्रोश उभरकर प्रकट हुआ है—

छोड़ों हाय केवल घृणा और दुर्गन्ध तेरा रेशमी वह शब्द-संस्कृति अन्ध
तेरा क्रोध मुझको, खूब लगता क्रोध, तेरे रक्त में भी सत्य का अवरोध
तेरे रक्त में घृणा आती तीव्र, तुझको देख मितली उमड़ आती शीघ्र
तेरे हास में भी रोग-कृमि में हैं उग्र, तेरा नाश तुझ पर क्रुद्ध, तुझ पर व्यग्र।
मेरी ज्वाल, जन की ज्वाल होकर एक, अपनी उष्णता से धो चले अविवेक
तू है मरण, तू है रिक्त, तू है व्यर्थ, तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ।

'नाश देवता' नामक कविता में कवि वर्तमान अव्यवस्था, असंतोष, अशान्ति के सर्वनाश की जहाँ कामना करता है वहाँ निराशा के असीम अंधकार में प्रकाश के अस्तित्व को स्वीकार करता है।

कवि की मान्यता है कि नवसृजन और व्यवस्थित निर्माण के लिए नाश और विध्वंस आवश्यक है। यही कारण है कि कवि ने नाश को देवता कहा है :

''घोर धनुर्धर, बाण तुम्हारा सब प्राणों को पार करेगा,
तेरी प्रत्यंचा का कम्पन सूनेपन का भार हरेगा।
हिमवत् जड़ निस्पन्दन हृदय के अंधकार में जीवन भय है,
तेरे तीक्ष्ण बाण की नोकों पर जीवन संचार करेगा। (वही. पृ. 26)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि ने 'सृजनक्षण' नामक कविता में उत्साह को इस प्रकार परिभाषित करके देश के युवकों को विरोधों, अभावों और विपरीत जीवन परिस्थितियों में डटकर दो-चार होने की प्रेरणा दी है -

"यह उत्साह सफ़ेद ज्वाल है जो कि कलुष का महाकाल है
इसमें पड़कर तुम भी श्वेत बनोगे तपकर
नाप कौन पाएगा तुमको आओगे जब इससे नपकर। (पृ. 29)

'अन्तदर्शन' कविता में जिस गहरे असंतोष की ओर कवि ने संकेत किया है, वह भौतिक जगत के बाह्य संघर्ष और आध्यात्मिक विश्व के आन्तरिक द्वन्द्व से उपजा है -

"गहरे असंतोष की ज्वाला सुलग जलाती है मुझको ही।"

'आत्मसंवाद' में कवि की मान्यता है कि समूचा मानव समुदाय ही आज अनीति और अन्याय के पथ पर बढ़ रहा है, जिसे वह देख रहा है -

"उग्रद्रष्टा मैं स्वयं हूँ जबकि दुनिया मार्ग-भ्रष्टा"

आज के जड़ जगत् में सरे आम सत्य और न्याय घुट रहा है। त्याग और सेवा की भावनाएँ नक्कारखाने में तूती की आवाज की तरह दबती जा रही हैं। फिर भी कवि 'व्यक्तित्व और खण्डहर' नामक कविता के माध्यम से मोर्चे पर डटा हुआ दिखाई पड़ता है :

"तिमिर के घन आवरण में, भावना के इस मरण में
हैं हुए भय-स्तब्ध, तन निष्पन्द, दिग रव-हीन
हैं हुए आलोकित हुआ विक्षुब्ध गीतों का महा तूफान !
ले तीक्ष्ण स्वर-सागर-उफान !"

'मैं उनका ही होता' कविता में कवि ने विश्व और समाज हितैषी मान्यताओं और मर्यादाओं के प्रति जहाँ कृतज्ञता का भाव प्रकट किया है वहीं युग में व्याप्त वर्तमान आपाधापी के छिछलेपन पर गहरा प्रहार भी किया है -

"मैं ऊँचा होता चलता हूँ / उनके ओछेपन से गिर-गिर
उनके छिछलेपन से खुद-खुद मैं गहरा होता चलता हूँ।"

'हे महान' कविता के द्वारा कवि असीम सत्ता की वंदना करके अपनी आध्यात्मिक-सांस्कृतिक चेतना को वाणी देता है। साथ ही, भारत माता के स्नेह वात्सल्य भाव को भी महसूस करता है -

"हे महान ! तव विस्तृत उर से दृढ़ परिरम्भण की क्षमता दो,
तव स्नेहोष्ण हृदय का स्पन्दन सुन पाने की आकुलता दो।"

'तारसप्तक' में मुक्तिबोध की संकलित कविताओं के गहन विवेचन-विश्लेषण और चिन्तन, मनन के पश्चात् जो धारणा पुष्ट होती है, उससे कवि का राष्ट्रवादी स्वरूप उभरकर सामने आता है।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुजरात में मीडिया की हिंदी सेवा

- डॉ. राम गोपाल सिंह

स्वतंत्रता के बाद, भारतीय संविधान में हिंदी को संघ की राजभाषा का दर्जा मिलने के बाद संचार माध्यमों में हिंदी का प्रयोग द्रुत गति से बढ़ा है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 में देवनागरी में लिखित हिंदी को संघ की राजभाषा घोषित किया गया तथा अनुच्छेद 351 में हिंदी के संवर्धन एवं उसके सर्वतोमुखी विकास की जवाबदारी संघ सरकार के कंधों पर डाली गई, जिसे कार्यान्वित रूप देने के लिए राष्ट्रपति के आदेशों, संसदीय राजभाषा समितियों, राजभाषा आयोगों, राजभाषा अधिनियमों, नियमों आदि के माध्यम से हिंदी के प्रगामी प्रयोग हेतु निरंतर प्रयत्न किए जाते रहे हैं। राजभाषा नियम, 1976 के अनुसार समस्त भारत को भाषायी दृष्टि से तीन क्षेत्रों - 'क', 'ख', और 'ग' में बाँटा गया है। 'क' क्षेत्र में समस्त हिंदी भाषी राज्यों, 'ख' क्षेत्र में समान-हिंदी भाषी राज्यों तथा 'ग' क्षेत्र में गैर-हिंदी भाषी राज्यों को रखकर हिंदी के प्रगामी प्रयोग के बारे में दिशानिर्देश दिए गए हैं। गुजरात राज्य समान हिंदी भाषी क्षेत्र अर्थात् 'ख' क्षेत्र में आता है। गुजरात में हिंदी भाषा के लिए उपयुक्त वातावरण पहले से ही रहा है। गुजरात क्षेत्र की भाषा गुजराती होते हुए भी गुजरात में हिंदी के विकास के अवसर सुदीर्घकाल से रहे हैं। हिंदी भाषा के विकास में गुजरात के संत कवियों, साहित्यकारों, लेखकों, महापुरुषों आदि का अविस्मरणीय एवं उल्लेखनीय योगदान रहा है।

जनसंचार के विविध माध्यमों में अखबार, आकाशवाणी, दूरदर्शन एवं फिल्म प्रमुख हैं। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन दोनों ही सरकार के सीधे नियंत्रण में आते हैं, अतः सरकार ने इन माध्यमों द्वारा हिंदी का व्यापक प्रचार-प्रसार किया है। अखबारों ने भी हिंदी को दिशा प्रदान की है।

अखबार : गुजरात से निकलने वाले हिंदी अखबारों ने हिंदी के विकास एवं प्रचार-प्रसार कार्य में नए अध्याय जोड़े हैं। भारत में हिंदी अखबारों का इतिहास बहुत लम्बा नहीं है। पंडित युगल किशोर शुक्ल द्वारा सन् 1826 में कलकत्ता से उदंत मार्तंड द्वारा हिंदी पत्रकरिता का अभ्युदय हुआ। राष्ट्रीय जागरण, देश प्रेम, स्वतंत्रता, भाईचारा, साहित्य संवर्धन आदि की बलबती प्रेरणा लेकर भारत में हिंदी पत्रकारिता ने नए आयाम उपस्थिति किए हैं जिनमें गुजरात भी अछूता नहीं है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी की हिंदी सेवा जग जाहिर है। उन्होंने राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना का स्वर झंकृत करने के उद्देश्य से कई पत्र निकाले जिनमें हिंदी में 'हरिजन पत्रिका' डॉ. जे. सी. कुमारप्पा के संपादकत्व में निकली। यह पत्रिका काफी समय तक हिंदी की सेवा करती रही।

गुजरात से निकलने वाले हिंदी अखबारों में दैनिक पत्रों में अल्पविराम, गुजरात वैभव, हैराल्ड यंग लीडर, तथा साप्ताहिक अखबारों में लोकतेज, कर्मपुत्र, कर्णावती, चौपाल क्रोनिकल, पुलिस समाचार, मरुवेदना आदि के नाम लिए जा सकते हैं। श्री चुनीभाई भट्ट के सम्पादन में चार पृष्ठों के लघुपत्र के रूप में 'अल्पविराम' मेघाणीनगर, अहमदाबाद से विगत लगभग दस वर्षों से निकल रहा है। श्री विश्वदेव शर्मा के सम्पादकत्व में 'गुजरात वैभव' अहमदाबाद से निकल रहा है। यह अखबार संपूर्ण दैनिक अखबार की कसौटी पर खरा उतरता है तथा गुजरात के समस्त हिंदी अखबारों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिनिधि के रूप में समस्त भारत के हिंदी अखबारों की कतार में रखने लायक है। 'हेराल्ड यंगलीडर' अहमदाबाद और बडौदा दोनों ही जगहों से प्रकाशित होकर हिंदी की सेवा कर रहा है।

गुजरात से निकलने वाले साप्ताहिक अखबारों में 'लोकतेज' श्री सनाढ्य के सम्पादन में सूरत से निकल रहा है। श्री महेश देसाई के स्वत्वाधिकार में 'कर्मपुत्र' सन् 1987 से अहमदाबाद से निकल रहा है। श्री भारत भूषण के सम्पादकत्व में 'कर्णावती' अपनी साप्ताहिक सनसनीखेज ख़बरों के लिए हिंदी प्रेमियों के दिल में जगह बना चुका है। 'चौपाल क्रोनिकल' श्री योगेश शर्मा के सम्पादकत्व में अहमदाबाद से निकल रहा है। श्री सलीम शेख संपादन में 'पुलिस समाचार' प्रकशित हो रहा है। 'मरुवेदना' साप्ताहिक श्री सुरेंद्रजीत सिंह के संपादन में अहमदाबाद एवं झुंझनूं (राजस्थान) से एक साथ प्रकाशित हो रहा है। गुजरात के राजस्थानी समाज द्वारा 'मारवाड मित्र' पाक्षिक अखबार श्री पुखराज एन. प्रजापति के संपादन में निकल रहा है। मासिक अखबारों में 'मंथन' डॉ. घनश्याम अग्रवाल द्वारा जूनागढ़ से निकाला जा रहा है।

संख्या की दृष्टि से देखा जाए तो गुजरात से निकलने वाले हिंदी अखबारों की तुलना में हिंदी पत्रिकाएँ अधिक संख्या में निकल रही हैं। इन पत्रिकाओं में विद्यापीठ, राष्ट्रवीणा, सुधाविंदु, चिदम्बरा, प्रक्रिया, आकार, उत्तरा, रैन बसेरा, भाषा सेतु, अनुवाद भारती, शोध भारती, हास्य-व्यंग्य भारती, राष्ट्रवीणा, उत्कर्ष, समन्वय, संपर्क, सुरभि, गुर्जर भारती, साबरमती, साहित्य संहिता, आरोहण, परिधा, कस्तूरी, विद्या आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । इससे यह स्पष्ट होता है कि गुजरात के दैनिक, साप्ताहिक पाक्षिक एवं मासिक अखबार जहाँ हिंदी का कार्य निरंतर कर रहे हैं, वहीं हिंदी की मासिक, द्विमासिक, त्रैमासिक, छमाही एवं वार्षिक पत्रिकाएँ भी हिंदी का कार्य आगे बढ़ाने में पीछे नहीं हैं। गुजरात के अखबार एवं पत्रिकाएँ हिंदी भाषी प्रदेशों से निकलने वाले अखबारों या पत्रिकाओं से किसी भी क्षेत्र में पीछे नहीं हैं।

आकाशवाणी : आकाशवाणी का इतिहास भी बहुत लम्बा नहीं है। सन् 1920 ई. में पिट्सवर्ग (यू.एस.ए.) में एक प्रसारण केंद्र स्थापित हुआ था लेकिन 23 फरवरी, 1920 को चेम्सफोर्ड में मारकोनी कम्पनी ने सर्वप्रथम रेडियो प्रसारण किया। बी.बी.सी. द्वारा नवम्बर, 1920 ई. में नियमित प्रसारण की दिशा में प्रयास हुए। भारत में मद्रास प्रेसीडेंसी क्लब के नाम से 16 मई, 1924 को प्रसारण आरंभ हुआ तथा 23 जुलाई, 1927 को इंडियन ब्रोडकास्टिंग कम्पनी की बम्बई प्रसारण शाखा का उद्घाटन किया गया। 13 अप्रैल, 1930 से भारत सरकार के स्वामित्व में प्रसारण कार्य आया तथा इसे 'इंडियन स्टेट ब्रोडकास्टिंग सर्विस' नाम दिया गया। 8 जून, 1936 को लार्ड लिनलिथगो द्वारा इसे 'ऑल इंडिया रेडियो' नाम दिया गया। दिसंबर, 1957 से इसे 'आकाशवाणी' नाम दिया गया।

3 अक्टूबर, 1957 को 'विविध भारती' तथा 14 मई, 1966 को उर्दू सर्विस के प्रारंभ हो जाने पर आकाशवाणी को बहुत लोकप्रियता प्राप्त हुई। कला, साहित्य, संस्कृति, मनोरंजन, ज्ञान-विज्ञान आदि को जन-जन तक पहुँचाने में आकाशवाणी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सुमित्रानंदन पंत, फिराक गोरखपुरी, इलाचंद जोशी, भगवतीचरण वर्मा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अज्ञेय, अश्क, मजाज, पं. नरेंद्र शर्मा जैसे दिग्गज साहित्यकारों ने आकाशवाणी को गौरवान्वित किया तथा हिंदी के कार्य को आकाशवाणी के माध्यम से आगे बढ़ाया।

गुजरात में आकाशवाणी के माध्यम से हिंदी का क्षेत्र व्यापक हुआ है। गुजरात में आकाशवाणी के कई केंद्र हैं जिनमें आकाशवाणी, अहमदाबाद, बडौदा, राजकोट, भुज, गोधरा आदि प्रमुख हैं। इन केंद्रों के माध्यम से आकाशवाणी के कार्यक्रमों का प्रसारण समस्त गुजरात में होता है। भारत के अन्य प्रमुख केंद्रों के कार्यक्रमों के अतिरिक्त नई दिल्ली से राष्ट्रीय प्रसारण सेवा के हिंदी कार्यक्रम पूरे देश में एक साथ बड़े चाव से सुने जाते हैं। खेल जगत, विविधा, वित्तीय समीक्षा, पाश्चात्य संगीत, शास्त्रीय संगीत, भक्ति संगीत, समाचार, हिंदी वार्ताएँ/परिचाएँ, रूपक, नाटक, संगीत सभा, खेलकूद आदि के कार्यक्रम लोकप्रिय हैं। विज्ञापन प्रसारण सेवा (विविध भारती) के महत्वपूर्ण प्रसारणों में भूले बिसरे गीत, चित्रलोक, मनचाहे गीत, इंद्रधनुष, आपके लिए, छायागीत, आपकी फरमाइश आदि कार्यक्रम श्रोताओं के दिल के कोने में जगह बना ही चुके हैं। फ़िल्मी संगीत, भक्ति संगीत, सुगम संगीत, लघुवार्ता आदि मनोरंजक कार्यक्रम श्रोताओं का दिल मोहे हुए हैं।

आकाशवाणी के कार्यक्रमों का प्रसारण विशेष वर्ग के श्रोताओं के लिए भी होता है। लघु कहानी, नाटक, कविता, व्यंग्य रचनाओं का प्रसारण किया जाता है। ग्रामीण और शहरी महिलाओं के लिए उपयोगी और मनोरंजक वार्ताओं और गीतों का प्रसारण होता है। युववाणी कार्यक्रम अपनी अलग पहचान पहले से ही बनाए हुए हैं। साथ ही, शैक्षणिक कार्यक्रमों का प्रसारण भी होता है।

समाचार सेवा प्रभाग से आकाशवाणी द्वारा समाचार निश्चित अंतराल पर प्रसारित होते हैं। समाचार दर्शन समाचार पत्रों से, संसद समीक्षा आदि का प्रसारण भी समाचार सेवा प्रभाग द्वारा होता है। विदेश सेवा प्रसारण के माध्यम से भी आकाशवाणी ने विभिन्न भाषाओं द्वारा भारत की छवि को चारों दिशाओं में फैलाया है। खेल कमेंट्री में क्रिकेट कमेंट्री के तो लोग दीवाने हो गए हैं।

गुजरात में आकाशवाणी ने अपने हिंदी कार्यक्रमों के माध्यम से सरकारी माध्यम की जवाबदारी का समुचित रूप से निर्वाह करते हुए हिंदी के प्रचार-प्रसार में हिंदी के लिए धीरे-धीरे और अनुकूल वातावरण भी निर्मित किया है। गुजरात में हिंदी के प्रचार-प्रसार कार्य में आकाशवाणी की सराहनीय एवं महत्वपूर्ण भूमिका है। अतः कहा जा सकता है कि आकाशवाणी ने अपने विविध मनोरंजक एवं ज्ञानपूर्ण हिंदी कार्यक्रमों द्वारा गुजरात की जनता को ज्ञान-दान तो दिया ही है; साथ ही, हिंदी का कार्य भी आगे बढ़ाया है।

दूरदर्शन : दूरदर्शन भी इसी सदी की उपज है। दूरदर्शन के नियमित कार्यक्रम का प्रसारण सन् 1936 में बी.बी.सी. द्वारा किया गया। 1939 के न्यूयार्क विश्व मेले में लोगों ने टेलीविजन देखा। भारत ने यूनेस्को की सहायता से 15 सितंबर, 1965 में दूरदर्शन का आनंद लिया। डॉ. विक्रम साराभाई के प्रयासों से अहमदाबाद में सन् 1967 में स्पेस एप्लीकेशन सेंटर की स्थापना हुई। आरंभ में केवल दिल्ली में ही एकमात्र दूरदर्शन केंद्र था। 15 सितंबर, 1959 को यूनेस्को की सहायता से आकाशवाणी के अंग के रूप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यालयों और गाँवों हेतु दूरदर्शन की प्रयोगिक सेवा शुरू की गई तथा टेलीविजन सेटों की व्यवस्था की गई। 15 अगस्त, 1982 को भारत में रंगीन टेलीविजन का प्रारंभ हुआ। अप्रैल, 1982 में भारत द्वारा अपना पहला स्वदेशी उपग्रह-इन्सेट एक-ए अंतरिक्ष में छोड़ा गया जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय कार्यक्रमों का एक साथ प्रसारण भारत के महानगरों- दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता और मद्रास में किया गया।

अक्तूबर, 1983 को भारत द्वारा अपना दूसरा उपग्रह इन्सेट एक-बी अंतरिक्ष में भेजा गया। इस तरह भारत ने दूरदर्शन के क्षेत्र में बहुत तीव्र गति से सफलता प्राप्त की है जिसके फलस्वरूप 1984-85 तक यह माध्यम देश में घर-घर में प्रविष्ट हो गया तथा सम्प्रेषण का सबसे प्रभावशाली माध्यम सिद्ध हो रहा है। आज दूरदर्शन के दर्जनाधिक अपने ही चैनल हैं तथा अनेक इन्सेट उपग्रहों एवं डिश एंटीना के माध्यम से दूरदर्शन के अनेकानेक चैनल उपलब्ध हैं । आज दूरदर्शन मनोरंजन का अभिन्न अंग बन चुका है। इसकी सहायता से अनेकानेक प्रकार की जानकारियाँ और ज्ञान हासिल होता है। हम अपने कमरे में बैठे-बैठे सम्पूर्ण विश्व की खबर रख सकते हैं; साथ ही, चक्षुग्राह्य भी कर सकते हैं।

गुजरात में दूरदर्शन के कई केंद्र है जिनमें अहमदाबाद एवं राजकोट केंद्र प्रमुख हैं। दिल्ली से दूरदर्शन के राष्ट्रीय चैनल तथा मेट्रो चैनल गुजरात में उपलब्ध हैं जिनके माध्यम से गुजरात की जनता हिंदी के विभिन्न कार्यक्रम बड़े चाव से देखती है। इन कार्यक्रमों में फीचर फिल्म, धारवाहिक, नाटक, नृत्य, संगीत, कार्टून फिल्म, खेलकूद, समसामयिक विषयों पर आधारित वृत्तचित्र, सामाजिक तथा राजनीतिक गतिविधियों के कार्यक्रम, सभ्यता, धर्म तथा आदर्शों पर आधारित कार्यक्रम, समाचार आदि उल्लेखनीय हैं।

दूरदर्शन के अपने चैनलों के अतिरिक्त जी. टीवी, जैन टीवी. सोनी टीवी. केबिल टीवी. आदि कई हिंदी चैनल गुजरात की जनता को उपलब्ध हैं। इन चैनलों के माध्यम से गुजरात में हिंदी का कार्य बहुत ही व्यापक रूप से हो रहा है। गुजरात के दूरदराज के गाँवों की जनता भी दूरदर्शन के माध्यम से हिंदी सीख गई है। गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद द्वारा प्रत्येक वर्ष आयोजित राष्ट्रीय सेवा योजना के शिविरों में मुझे स्वयं कई बार देहात में सुनने को मिला है कि गाँव के बच्चे टी.वी. देखते हैं जिससे उन्हें हिन्दी खूब समझ आती है। कहने का मंतव्य यह है कि गुजरात में दूरदर्शन ने हिंदी भाषा को गाँव-गाँव तक पहुँचाया है तथा उसे गाँव के लोगों हेतु ग्राह्य भी बनाया है। अतः कहा जा सकता है कि दूरदर्शन द्वारा हिंदी के कार्यक्रमों के माध्यम से हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से किया जा रहा है। हिंदी की फिल्में हिंदी के प्रचार-प्रसार कार्य में परोक्ष रूप से चार चाँद लगा रही हैं।

इस प्रकार से स्पष्ट होता है कि गुजरात में अखबार, आकाशवाणी तथा दूरदर्शन ने हिंदी भाषा को घर-घर तक, व्यक्ति-व्यक्ति तक पहुँचाया है तथा गुजरात की गुजराती भाषी जनता को द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी भाषी भी बनाया है। अतः हिंदी के विकास, प्रचार-प्रसार एवं अभिवृद्धि में इन जनसंचार माध्यमों की भूमिका महत्वपूर्ण एवं सर्वथा सराहनीय है।

•

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबीर की प्रासंगिकता

- डॉ. महेश व्यास

उत्तर भारत में सर्वप्रथम भक्ति को सर्वसाधारण तक पहुँचाने का श्रेय रामानंद को और तत्पश्चात् कबीर को मिलता है। रामानंद ने भक्ति को एकान्तिक साधना मानते हुए भी मानव मात्र के लिए इसे सुलभ बना दिया था तो कबीर ने इसे लोकमानस में सरलता से प्रवेश करने का मार्ग बना लिया था।

आज जैसे अनेक मल्टीनेशनल कंपनियों के बीच व्यावसायिक स्पर्धाएँ चल रही हैं, वैसी ही अनेक सम्प्रदायों, धर्मों एवं जातियों के बीच भी चल रही हैं। किसी भी बहाने से हो रहे उत्सव हों, प्रवचन या अनुष्ठान हों या फिर चैनल युद्ध राजनीति की युद्धभूमि में साम्प्रदायिक, बिन-सांप्रदायिक की बौद्धिक लड़ाइयाँ सार्वत्रिक रूप से विचारहीनता, विवेकहीनता का जुनून देखने को मिलता है। ऐसी परिस्थिति में कबीर की प्रासंगिकता सहज ही स्वीकार्य व इच्छनीय है। आज क्रिकेट मैच जैसे मुद्दे पर भी राष्ट्र भारी तनाव से गुज़रता दिखाई देता है। धर्म परिवर्तन जैसा संवेदनशील मुद्दा आज सुर्खियों में है । राजनेताओं की शुतुर्मुर्गी प्रवृत्ति ने भारतवर्ष को आज मध्यकाल में पुनः पहुँचा दिया है । भारत-पाकिस्तान की शत्रुता के पीछे धिक्कार की भावना के अतिरिक्त कुछ नहीं है। ऐसे परिदृश्य में कबीर की प्रासंगिकता सहज स्पष्ट है । कबीर की वाणी में वह ताकत है कि वह हमें इस धिक्कार की भावना से बाहर ला सकती है। आज विश्व के सभी राष्ट्र अतिवाद की ओर आगे बढ़ते हुए नज़र आ रहे हैं, तब समूची मानवजाति के कल्याण एवं अस्तित्व के लिए भी कबीर साहब अनिवार्य बन गए हैं क्योंकि कबीर ने सहज पर ज़ोर दिया है। अतिवाद से ग्रस्त समाज़ के लिए बुद्ध का जो मध्यम मार्ग है, वही कबीर का सहज मार्ग है। धार्मिक उग्रवाद मानवता के विकास के मार्ग में रोड़े डाल रहा है। कबीर ने इस धार्मिक उग्रवाद के विद्युत प्रवाह पर सहज का स्टेबीलाइजर लगाया था। हृदय की स्वच्छ कसौटी पर विवेक की जो खरी लीक बनती उसे ही कबीर साहब सही मानते। अनुभव की तुला पर तथ्य और सत्य को परखना ही उनका जीवनक्रम बन गया था। कबीर की प्रासंगिकता को चार वर्गों के संदर्भ में रखा जा सकता है : (1) समाज जीवन के संदर्भ में, (2) पलायनवादी, निरुत्साही, बेरोजगार युवाओं के संदर्भ में, (3) वर्तमान समय के राजनेता और राजनीति के संदर्भ में, तथा (4) तथाकथित समाज-सुधारक, मठाधीशों व समाज सुधारकों के संदर्भ में।

हम बचपन से सुनते आये हैं कि एक समय भारतवर्ष विश्व में सुख-समृद्धि, ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में प्रभुसत्ता सम्पन्न था। डाल-डाल पर सोने की चिड़ियों का बसेरा था किन्तु आज हर शाख पर उल्लू बैठा नज़र आता है। देश अनेक संकटों से घिरा नज़र आता है। उपाय नज़र नहीं आता। ऐसे माहौल में हमें कबीर से प्रेरणा मिल सकती है। शायद यह पहला ही प्रयास था जब किसी भक्त ने अपने साधारण व्यवसाय को छोड़े बिना एक ऊँची मंजिल पाई हो। कबीर का आत्मगौरव ही उसे ऐसी ऊँचाई प्रदान करता है। उनका समूचा जीवन जनता के उद्बोधन में बीता। मानवतावाद में विश्वास रखनेवाला व्यक्ति ही यथार्थ में सभ्य एवं संस्कृत है, यह सत्य कबीर के जीवन से प्राप्त होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबीर का रुदन अपने लिए नहीं, संसार के लिए है। समाज में व्याप्त जड़ता, अंधता, कट्टरता को दूर करने में कबीर ने जिस हिम्मत का परिचय दिया ऐसी हिम्मत वर्तमान समय में हमारे तथाकथित सुधारक, संत और राजनेता दिखाएँ तो हो सकता है सच्ची समता की प्रतिष्ठा हो जाए। वास्तव में कबीर अपने समय के 'वन मेन आर्मी' थे, जिसने अपना युद्ध अपने ढंग से लड़कर जीता था। मनुष्य-मनुष्य के बीच घृणा का अंत ही उनका लक्ष्य था । इसके लिए समाज को खरी-खोटी भी सुनाई । इतने स्पष्ट और कठोर भाषा में कदाचित किसी संत, भक्त या महात्मा ने जातिवाद, धर्मवाद या वर्णवाद पर प्रहार नहीं किया । धार्मिक साम्प्रदायिक जातिवादी कट्टरता के गिरफ्त में फँसे हमारे राष्ट्र के लिए आज कबीर की प्रासंगिकता और अधिक बढ़ गई है। उन्होंने अपने समय के सभी धर्म के पाखंडों, पाखंडियों को फटकारा था। हिन्दू-मुस्लिम दोनों कबीर को कठोर मानते थे 'फिर भी' उन्होंने कबीर को प्रेम से स्वीकारा है। यही कबीर की विजय है। उन्होंने प्रेम के ढाई आखर को ठीक तरह से पचाया था। आज हमें भी प्रेम के इस ढाई आखर को समझना होगा । कबीर हमें सुख का लोकर खोलने की मास्टर की प्रदान करते हैं : ''निर वैरी निह कमता, साई सेती नेही।

विषिया सूँ न्यारा रहे, सन्तवन का अंग एक।''

इसके लिए जाति, वर्ण, धर्म, मत कुछ भी बाधक नहीं हैं। यही वजह है कि कबीर अपने धर्म को 'सहज धर्म' का नाम देते हैं। कबीर के इस धर्म में कर्मकांड को नहीं, कर्म की प्रधानता स्वीकार्य है। उन्होंने स्पष्ट कर दिया है -

''पत्थर पूजै हरि मिलै दो मैं पूजूँ पहार।
ता ते तो चाकी भली पीसि खाय संसार ॥''

आज मौन व्रत धारण करके बैठनेवालों के लिए कबीर का यह मुखर रूप एक चेलेन्ज है। कबीर का यह रूप शायद दोगले टुच्चे लोगों के मत में खंडनात्मक है किन्तु इसी में ही मानवतावाद का प्राकट्य है। उनके मन में मनुष्य की परिकल्पना व्यापक मूल्यों के आधार पर है।

कबीर ने प्रेम सहित सत्य तथा संतोष को ग्रहण करने पर बल दिया है। आज उपभोक्तावादी संस्कृति को अपनाने की मेराथन दौड़ में उतर पड़े लोगों को कबीर का संतोष ही बचा पाएगा। वास्तव में उन्होंने मनुष्य की अस्मिता को प्रकट होने की खिड़कियाँ खोल दी हैं।

कबीर की प्रासंगिकता का एक और पहलू भी है। वे सही अर्थ में बिनसाम्प्रदायिकता के हिमायती थे। धर्म के स्तर पर कभी भी सांप्रदायिकता को उन्होंने स्वीकारा नहीं है। उनकी दृष्टि में व्यापक मानवीय मूल्यों का आचरण करनेवाला ही सच्चा सज्जन है, धार्मिक है। इसी संदर्भ में उन्होंने आचरण पर अधिक ज़ोर दिया है। जिसकी करनी व कथनी एक है वही सच्चा सज्जन है। आज द्विमुखी प्रतिभावाले समाज के संदर्भ में कबीरवाणी की प्रासंगिकता सहज ही स्पष्ट है। अनेक विचारों, मतों, सम्प्रदायों में खंड-खंड हो रहे हम सबके लिए बचने का मार्ग कबीर सहज ही दिखा जाते हैं। ''उन्हें अर्थहीन आचार पसंद नहीं थे, चाहे वे बड़े से बड़े आचार्य पैगम्बर हों या उच्च से उच्च समझी जानेवाली धर्म पुस्तक से उपविष्ट हों। बाह्याचार की निरर्थक पूजा और संस्कारों की विचारहीन गुलामी कबीर को पसंद नहीं थी। राम-रहीम और केशव-करीम की एकता स्वयं सिद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसे भी संप्रदाय बुद्धि से विकृत मस्तिष्क वाले लोग नहीं समझ पाते। कबीरदास से अधिक ज़ोरदार शब्दों में एकता का प्रतिपादन किसी ने नहीं किया।''

महात्मा गांधी ने कबीर को आत्मसात करके समाज में समन्वय की भावना जागृत की थी। डॉ. बडथ्वाल ने गांधी-कबीर में अद्‌भुत साम्य पाया है। उन्होंने इन दोनों की तुलना करते हुए लिखा है कि कबीर और गांधी में अद्‌भुत साम्य है । दोनों ने स्वेच्छा से कर्मयोग को अपनाया था। दोनों ने सामाजिक अन्याय और गरीबी के उन्मूलन के लिए जीवन समर्पित कर दिया था। कबीर आज भी विजेता के रूप में अमर हैं। काल का प्रवाह इस प्रबल स्वर को मिटा नहीं पाया है। आज 600 साल के बाद भी कबीर का वही स्वर अन्याय का सामना कर मानवमात्र के कल्याण की कामना से फिर से उद्वेलित हो रहा है। किस प्रकार कबीर ने परम्परा की मानसिक गुलामी से मुक्त होने का नारा देकर मानव मात्र की समानता की प्रतिष्ठा की थी, धर्म और समाज को अभिन्न घोषित किया था, ठीक इसी रास्ते पर गांधी चले थे। कबीर सहित अनेक सन्त कवियों का मूलाधार सत्य, अहिंसा और प्रेम था, इसे गांधी ने आत्मसात करके विश्व को राह दिखाई थी। सबको प्रेम करने की भावना, पारस्परिक कटुता, विरोध और संकीर्णता के नाश के लिए समर्थ है। संतों की दृष्टि में ब्रह्म को प्रेम करना जीवमात्र को प्रेम करने के बराबर है। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जो व्यक्ति प्रेम कर सकता है वह स्वभाव से उदार, सहिष्णु व उदार दृष्टिकोणवाला होता है। प्रेम मन के सभी क्लेशों को दूर करके मानव को सही अर्थ में मनुष्य बनाता है। आज परस्पर जहर उगल रहे विश्व को कबीर का ढाई आखर राह दिखा सकेगा। यदि इसका स्वीकार कर सकें तो विश्वशांति के लिए सी.टी.बी.टी. या किसी भी सन्धि की आवश्यकता नहीं है।

अंत में इतना ही कि, समाज की चिन्ता करनेवाले आज कौन हैं, कहाँ हैं? कबीर को क्यों चिन्ता करनी पड़ी ? इसके पीछे समाज हित की ही चिन्ता है। व्यक्ति नहीं किन्तु समाज का महत्व है, यह सत्य कबीर समझाते हैं। नरसिंह के वैष्णव जन का रूप कबीर में चरितार्थ हुआ है। जिसने पराई पीर को जाना, समझा, भोगा है जिसका परिचय उनकी वाणी में अनेक प्रकार से मिल जाता है :-

''सुखिया सब संसार है खावे अरु सोवे ।
दुखिया दास कबीर है जागे अरु रोवै ॥''

आज यह जानकर दुख होता है कि एक ऐसे राष्ट्र को, जिसने कभी भी किसी के सार्वभौमत्व पर हमला नहीं किया, विचार तक नहीं किया, उसे आज परमाणु विस्फोट के लिए विवश होना पड़े-यह समय की विडम्बना ही है। आज आवश्यकता है कबीरवाणी के विस्फोट की। आज व्यापक परमाणु परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि की बातें हो रही हैं तब मैं कहना चाहूँगा कि हमें जरूर है 'कबीर परीक्षण प्रसार सन्धि' की । यदि ऐसा हो सका तो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना अवश्य साकार होगी।

•

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी की अन्तर्क्षेत्रीय, अन्तर्देशीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय भूमिका

— प्रो. महावीर सरन जैन

प्रत्येक भाषा के अनेक रूप होते हैं। राजकाज में प्रयुक्त होने वाली भाषा, विज्ञान एवं तकनीक के क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली भाषा, व्यापार एवं उद्योग के क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली भाषा-ये सभी भाषा-रूप उस भाषा क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली जनभाषा से उद्भूत होते हैं।

हिन्दी भाषा की अर्थवत्ता, हिन्दी-उर्दू का सम्बन्ध, हिन्दी भाषा क्षेत्र तथा हिन्दी का व्यवहार क्षेत्र आदि बिन्दुओं को लेकर न केवल सामान्य व्यक्ति के मन में बहुत-सी भ्रान्त धारणाएँ बनी हुई हैं बल्कि हिन्दी भाषा के कतिपय विद्वानों, आलोचकों तथा अध्येताओं का मन भी तत्संबंधित भ्रान्तियों से मुक्त नहीं है। भ्रान्त धारणाओं का निराकरण आवश्यक है। मानक हिन्दी की मूलाधार बोली हिन्दी भाषा की खड़ी बोली है किन्तु खड़ी बोली ही हिन्दी नहीं है। संसार में ऐसा कोई भाषा-क्षेत्र नहीं है जिसमें क्षेत्रगत, वर्गगत एवं शैलीगत भिन्नताएँ न हों।

चीनी भाषा के बोलने वालों की संख्या 70-80 करोड़ है तथा उसका भाषा-क्षेत्र हिन्दी भाषा क्षेत्र की अपेक्षा बहुत विस्तृत है। चीनी भाषा क्षेत्र में जो भाषिक रूप बोले जाते हैं वे सभी परस्पर बोधगम्य नहीं हैं। जब पाश्चात्य भाषावैज्ञानिक चीनी भाषा की बात करते हैं तो किसी प्रकार का विवाद पैदा नहीं करते किन्तु यही विद्वान जब हिन्दी भाषा की बात करते हैं तो हिन्दी भाषाक्षेत्र के अन्तर्गत बोले जाने वाले हिन्दी भाषा के उपभाषा रूपों को भाषा का दर्जा दे देते हैं। हिन्दी भाषा क्षेत्र के अन्तर्गत भारत के 1. उत्तर प्रदेश, 2. बिहार, 3. मध्यप्रदेश, 4. राजस्थान, 5. हिमाचल प्रदेश, 6. हरियाणा, 7. दिल्ली तथा 8. चण्डीगढ़ राज्य/संघ शासित प्रदेश समाहित हैं। हिन्दी भाषा का क्षेत्र बहुत व्यापक है तथा हिन्दी भाषा क्षेत्र में ऐसी बहुत सी उपभाषाएँ हैं जिनमें पारस्परिक बोधगम्यता का प्रतिशत बहुत कम है किन्तु ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से सम्पूर्ण भाषा क्षेत्र एक भाषिक इकाई है तथा इस भाषाभाषी क्षेत्र के बहुमत क्षेत्र के बहुमत भाषाभाषी अपने-अपने क्षेत्रीय रूपों को हिन्दी भाषा के रूप में मानते एवं स्वीकार करते आए हैं।

'खड़ी बोली' हिन्दी भाषा क्षेत्र का उसी प्रकार एक क्षेत्रीय रूप है जिस प्रकार हिन्दी भाषा के अन्य बहुत से क्षेत्रीय रूप हैं। प्रत्येक भाषा क्षेत्र में अनेक क्षेत्रगत, वर्गगत एवं शैलीगत भिन्नताएँ होती हैं। प्रत्येक भाषा क्षेत्र में किसी क्षेत्र विशेष के भाषिक रूप के आधार पर उस भाषा का मानक रूप विकसित होता है जिसका उस भाषा क्षेत्र के समस्त क्षेत्रीय भाषिक रूपों के बीच संपर्क सेतु का काम करता है तथा कभी-कभी इसी मानक भाषा रूप के आधार पर उस भाषा की पहचान की जाती है। यह स्थिति कुछ इस प्रकार है, जिस प्रकार प्रत्येक देश की एक राजधानी होती है तथा विदेशों में किसी देश की राजधानी [illegible] से समझ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आने वाली बात है कि राजधानी ही देश नहीं होता। इसी प्रकार प्रत्येक भाषा क्षेत्र में व्यवहार होने लगता है, इसके प्रकार्यात्मक प्रचार-प्रसार के कारण उस भाषा का एक मानक रूप विकसित हो जाता है। मानक-भाषा भाषा का एक रूप होता है; मानक-भाषा ही भाषा नहीं होती।

भारतवर्ष के भाषा अध्येताओं में प्रायः एक भ्रान्त धारणा है कि भाषा एवं बोली दोनों अलग-अलग हैं। भारत के विश्वविद्यालयों में भाषाविज्ञान तथा भारतीय भाषाओं की परीक्षाओं में प्रायः यह प्रश्न पूछा जाता रहा है कि भाषा एवं बोली का अंतर बतलाइए। भाषाविज्ञान के तथ्यात्मक ज्ञान से परिचित न होने के कारण यह भ्रम फैल गया है कि भाषा अलग होती है और बोलियाँ अलग होती हैं। जिस प्रकार भारत के सम्पूर्ण राज्यों एवं संघशासित प्रदेशों को मिलाकर भारतदेश है उसी प्रकार भारत के जिन राज्यों एवं संघशासित प्रदेशों को मिलाकर हिन्दी भाषा क्षेत्र है, उस हिन्दी भाषा क्षेत्र के अन्तर्गत जितने भाषिक रूप बोले जाते हैं उनकी समष्टि का नाम हिन्दी भाषा है। हिन्दी भाषा क्षेत्र के प्रत्येक भाग में व्यक्ति स्थानीय स्तर पर क्षेत्रीय भाषा रूप में बात करता है किन्तु औपचारिक अवसरों पर तथा अन्तरक्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं सार्वदेशिक स्तरों पर भाषा के मानक रूप अथवा व्यावहारिक हिन्दी का प्रयोग होता है। यह कितना विरोधाभास है कि जब हिन्दी भाषा के उपभाषा रूपों/बोलियों पर विचार होता है तब खड़ी बोली, ब्रजभाषा, कन्नौजी, अवधी, बुन्देली, बघेली, छत्तीसगढ़ी, मालवी, निमाड़ी, जयपुरी, मारवाड़ी, मेवाती, हड़ौती, भोजपुरी, मैथिली, मगही, कुमाऊँनी, गढ़वाली आदि उपभाषा रूपों एवं बोलियों की चर्चा की जाती है किन्तु हिन्दी भाषा क्षेत्र के विश्वविद्यालयों में हिन्दी भाषा के क्षेत्रीय रूपों पर जो शोधप्रबन्ध लिखे जा रहे हैं उनमें हिन्दी भाषा के क्षेत्रीय रूपों को भाषा के नाम से पुकारा जा रहा है। आप विचार करें कि उत्तर प्रदेश हिन्दी भाषी राज्य है अथवा खड़ी बोली, ब्रजभाषा, कन्नौजी, अवधी, बुन्देली आदि भाषाओं का राज्य है। इसी प्रकार मध्य प्रदेश हिन्दी भाषी राज्य है अथवा बुन्देली, बघेली, छत्तीसगढ़ी, मालवी, निमाड़ी आदि भाषाओं का राज्य है।

संसार में जिन भाषाओं के बोलने वालों की संख्या एक करोड़ या उससे भी कम होती है उन भाषाओं का भाषा क्षेत्र सीमित होता है और इस कारण उन भाषाओं के क्षेत्रीय रूपों की संख्या कम होती है। चीनी, हिन्दी एवं रूसी भाषाओं का चूँकि भाषा क्षेत्र अपेक्षाकृत विस्तृत है; इनके प्रयोक्ताओं की संख्या अधिक है, इस कारण इन भाषाओं के क्षेत्रगत रूपों की संख्या भी अपेक्षाकृत अधिक है। पाश्चात्य भाषा वैज्ञानिक जिन प्रतिमानों के आधार पर योरोप में बोली जाने वाली अधिकांश भाषाओं की विवेचना करते रहे हैं उन प्रतिमानों के आधार पर चीनी, हिन्दी, रूसी, बंगला, तेलुगु, मराठी एवं तमिल जैसी भाषाओं की विवेचना नहीं की जा सकती।

मातृभाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार करने वालों की संख्या का प्रतिशत उत्तर प्रदेश में 90. 11, बिहार में 80.86, मध्य प्रदेश में 85.55, राजस्थान में 89,56, हिमाचल प्रदेश में 88.88, हरियाणा में 91.00 दिल्ली में 81.64 तथा चण्डीगढ़ में 61.06 है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषिक दृष्टि से उर्दू अलग भाषा नहीं है अपितु हिन्दी भाषा क्षेत्र की 'खड़ी बोली' (दिल्ली के चतुर्दिक व्यवहृत जनभाषा) पर आधारित फारसी लिपि में लिखी जाने वाली एक शैली है जिसमें अरबी-फारसी के शब्दों के प्रयोग के प्रति झुकाव रहता है।

ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक कारणों से सम्पूर्ण भारत में मानक हिन्दी के व्यावहारिक रूप का प्रसार बहुत अधिक है। भारत में किसी भी क्षेत्र में व्यावहारिक हिन्दी को बोलकर कोई व्यक्ति यात्रा कर सकता है, किसी भी क्षेत्र के शहर के बाजार में जाकर सामान खरीद सकता है, किसी रेलवे स्टेशन पर कुली तथा टैक्सी एवं रिक्शे वालों से बात कर सकता है, किसी भी होटल में जाकर बातचीत कर सकता है, किसी भी सरकारी अथवा अर्द्धसरकारी कार्यालय में जाकर सूचना प्राप्त कर सकता है। हिन्दीतर भाषी राज्यों में बहुसंख्यक द्विभाषिक-समुदाय द्वितीय भाषा के रूप में अन्य किसी भाषा की अपेक्षा हिन्दी का अधिक प्रयोग करता है जो हिन्दी के सार्वदेशिक व्यवहार का प्रमाण है। भारत के इन राज्यों में से कुछ राज्य ऐसे भी हैं जिनमें उनकी आबादी के 5 प्रतिशत से अधिक ऐसे निवासी हैं जो हिन्दी-उर्दू का मातृभाषा के रूप में प्रयोग करते हैं। इस दृष्टि से महाराष्ट्र (15.09%), कर्नाटक (11.93%), आन्ध्र प्रदेश (11.13%), पश्चिम बंगाल (8.72%), गोवा (7.13%), पंजाब (7.29%) राज्यों तथा अंडमान निकोबार (17.63%) तथा दादर-नागर हवेली (05.05%) केन्द्र शासित प्रदेशों का उल्लेख करना प्रासंगिक है।

सन् 1991 की जनगणना के अनुसार भारत की पूरी आबादी 83,85,83,988 थी और मातृभाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार करने वालों की संख्या 33,72,72,114 थी तथा उर्दू को स्वीकार करने वालों की संख्या 04,34,06,932 थी। हिन्दी एवं उर्दू को मातृभाषा के रूप में स्वीकार करने वालों की संख्या का योग 38,06,79,046 है जो भारत की पूरी आबादी का 44.98 प्रतिशत है।

अंग्रेजी भाषियों की पूरे विश्व की संख्या 33,70,00,000 है। (गिनीज बुक ऑफ नॉलिज, 1997 पृष्ठ 57) ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, आयरलैण्ड, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड आदि सभी देशों के अंग्रेजी भाषियों की संख्या के योग से अधिक जनसंख्या केवल भारत में हिन्दी एवं उर्दू भाषियों की है।

भारत की राजभाषा हिन्दी है तथा पाकिस्तान की राज्यभाषा उर्दू है। इस कारण हिन्दी-उर्दू भारत एवं पाकिस्तान में संपर्क भाषा के रूप में व्यवहृत है। भारत एवं पाकिस्तान के अलावा हिन्दी एवं उर्दू मातृभाषियों की बहुत बड़ी संख्या 1. बंगलादेश, 2. नेपाल, 3. मारीशस, 4. फिज़ी, 5. गयाना, 6. सूरीनाम, 7. त्रिनिडाड एवं टुबेगो, 8. म्यंमार, 9. भूटान, 10. बहरीन, 11. कुवैत, 12. ओमान, 13. कतार, 14. सऊदी अरब गणराज्य, 15. दक्षिण अफ्रीका, 16. श्रीलंका तथा अन्य देशों में है जहाँ अप्रवासी भारतीय एवं अप्रवासी पाकिस्तानी विशाल संख्या में निवास करते हैं तथा आपसी व्यवहार के लिए हिन्दी-उर्दू का प्रयोग करते हैं।

•••

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी भाषा की समस्याएँ और समाधान: वाक्य-स्तर पर

-डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर

मैं केरल की राजधानी में सचिवालय के नज़दीक अपने पुराने टाइप के घर में रहता हूँ। घर से जब विश्वविद्यालय के कार्यालय और अन्य कार्यालयों को जाता हूँ जो एकदम माडर्न हैं। फोटोकोपी कराने जहाँ जाता हूँ वह भी वातानुकूलित है। अपने घर पर भी बच्चे शीतीकरण यंत्र में रखा जल पीते हैं। ये सब देखकर अपने पुराने दिनों से वर्तमान दिनों का अंतर कुछ-कुछ समझने की कोशिश करता हूँ। लम्बी आह भरने के सिवा कोई सवाल कर नहीं पाता।

भाषा और व्याकरण की शिक्षा के क्षेत्र में अब ज़मीन-आसमान का फर्क आ गया है। हम लोग प्रारंभ में रामः रामौ रामाः से शुरू करके अनेक सुबंत शब्दों की सात विभक्तियों के रूप कंठस्थ करते थे। फिर चुनी हुई परस्मैपदी - आत्मनेपदी क्रियाधातु के दस-दस लकारों के रूप रटते। इसके बाद लघुसिद्धांतकौमुदी में संधि, लिंग, कारक, समास, कृत, तद्धित आदि के नियामक मुख्य सूत्रों का व्याख्यासहित अध्ययन अध्यापक के मुँह से सुनते कंठस्थ कर लेते थे। सारे सिद्धांत कंठस्थ पहले करते। उसके बाद उनके प्रयोग के प्रसंग पर गुरु जी उन उपयोग दिखाते, हमसे कराते। व्याकरण इसी प्रकार खतम होता। आगे न्यायशास्त्र में ही शब्दशक्ति प्रसंग के पश्चात वाक्य का प्रकरण आता था। वाक्य की पूर्ति के तीन घटक होते हैं - आकांक्षा, योग्यता और आसत्ति। जैसे-हमने कहा राम (श्रोता के मन में आकांक्षा उठती है - राम को क्या हुआ ? जब हम कहते हैं कि राम हिन्दी पढ़ रहा है, तब आकांक्षा की शांति हो जाती है। यदि हम कहें "राम चावल पी रहा है" तो श्रोता के मन में प्रश्न उठेगा कि चावल तो खाने की चीज है - यहाँ 'योग्यता' नहीं रहती। तब हम सुधारते हैं - "राम चावल की मांड पी रहा है।" इसी तरह रेडियो सुनते समय खबरें आती हैं । उद्घोषक बताता है-कल शिक्षण संस्थाएँ- इसके बाद तुरंत बिजली चली जाती है। घर के छात्र यह जानने के लिए उतावले रहते हैं कि शिक्षण संस्थाएँ क्या होगा ? बंद रहें - यही कामना है क्योंकि टी.वी. पर एक दिन का क्रिकेट है। रात भर बिजली गुल। दूसरे दिन सबेरे खबरों में कहते हैं। आज शिक्षण संस्थाएँ बंद रहेंगी। वाक्य की पूर्ति यदि काफी समय के बाद हो तो आसत्ति (समीपता) नष्ट होती है। इतना ही वाक्य विचार में पढ़ते हैं।

आधुनिक अध्ययन-प्रणाली में वाक्य विचार या सिंटैक्स का बड़ा महत्व है। प्रारंभिक वर्गों से विभिन्न प्रकार से वाक्यविचार की बातें सिखाई जाती हैं। अंग्रेज़ी व्याकरण और हिन्दी व्याकरण भिन्न-भिन्न विषय हैं। तथापि वर्तमान हिन्दी व्याकरण अंग्रेज़ी व्याकरण के साँचे ही में लिखा गया है। इसी तरह हिन्दी में भी वाक्यविचार को प्रारंभिक वर्गों से ही महत्त्व दिया जाता है। अब 'रचना' का पाठ्यक्रम है जिसमें मुख्यतः वाक्य रचना ही है।

वर्तमान युग के भारतीय भाषाध्ययन की दूसरी प्रवृत्ति 'अनुवाद का विशेष अध्ययन' है। डेढ़ सौ वर्षों की पश्चिमी शिक्षाप्रणाली ने हमें अंग्रेज़ी की ऐसी विरासत छोड़ी है जो छुड़ाए न छूटती। हम राजनीतिक बंधन से छूट गये। मगर मानसिक व बौद्धिक बंधन और कसता जा रहा है। हम अपने देश की भाषाओं की अभिव्यंजना शक्ति को जब बढ़ाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहुँचाना चाहते हैं तब अंग्रेज़ी की बहुमुखी सहायता लेनी पड़ती है, उसकी नकल भी की जाती है। ऐसा करते समय अंग्रेज़ी का प्रभाव हिन्दी भाषा की वाक्य रचना पर पड़े तो अचरज की बात नहीं है। यह प्रभाव कभी-कभी बढ़कर मज़ाक हो जाता है: जैसे- 'जज ने अपना टूर प्रोग्राम कैंसल किया', 'हमारी मॉडल एक्जाम में रम्या फर्स्ट आई' आदि प्रयोग सुलभ हैं।

स्वतंत्र भारत की संविधान सभा ने 14 सितंबर 1949 को भारत की राजभाषा के पद पर देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी को प्रतिष्ठित किया। तत्पश्चात हिन्दी की योग्यता बढ़ाने के लिए शब्दावली आयोग, विधि आयोग, अनुवाद ब्यूरो, पुरस्कार योजना आदि अनेक कदम उठाये गये। अंग्रेजी को हटाकर हिन्दी को स्थापित करने के ध्येय से उठाये गए सारे कदम अंग्रेज़ी की नकल करते आये हैं। इसमें हम किसी को अपराधी नहीं कह सकते। युग की यह माँग है।

यह आधुनिकता जीवन के हर क्षेत्र में है। साहित्य-समीक्षक आधुनिकता को लेकर शास्त्रार्थ करते हैं। भाषा के अध्ययन को भी आधुनिकता का मोह निगल चुका है। तभी व्याकरण के परंपरागत गहन अध्ययन की कई प्रणालियाँ चल पड़ी हैं जिन्हें अलग अलग 'स्कूल' नाम दिया गया है। पश्चिमी भाषाविज्ञानियों में ओट्टो येस्पर्सन, ब्लूमफील्ड, नॉम चाम्स्की, हाकेट, डी. सस्यूर आदि ने अपने-अपने सिद्धांत प्रस्तुत किये हैं। इन सबके अध्ययन के फलस्वरूप अब वाक्य-रचना विश्लेषण में संरचना तथा अर्थसंप्रेषण पर ज़ोर दिया जाता है।

राजभाषा हिन्दी के प्रयोग और अनुवाद के व्यावहारिक पक्ष के विकास ने कई नये विशेषज्ञों को प्रेरणा दी। डॉ. यमुना काचरू, डॉ. न. वी. राजगोपालन्, डॉ. भोलानाथ तिवारी, डॉ. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव आदि इनमें प्रमुख रहे। हिन्दी पर अन्य भाषाओं के, विशेषकर अंग्रेजी के प्रभाव पर कई विद्वानों ने अनुसंधान किया और ग्रंथ निकाले । इनमें निम्नलिखित आते हैं - (1) मोहनलाल तिवारी का 'हिन्दी भाषा पर फारसी और अंग्रेज़ी का प्रभाव' (2) रामचंद्र प्रसाद का 'आधुनिक हिन्दी आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव' (3) कैलाशचंद्र भाटिया का 'हिन्दी में अंग्रेज़ी के आगत शब्दों का भाषातात्विक अध्ययन' (4) विश्वनाथ मिश्र का 'हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव' (5) सूरजभान सिंह का 'हिन्दी का वाक्यात्मक व्याकरण' आदि। हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के परस्पर अनुवाद पर लिखा गया प्रथम संदर्भ ग्रंथ डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर का रचा हुआ 'अनुवाद : भाषाएँ-समस्याएँ' है। मेरी मेज़ पर जो नई पुस्तक है वह इसी विधा का नवीन ग्रंथ है। डॉ. राम गोपाल सिंह ने 'हिन्दी वाक्य रचना पर अंग्रेज़ी का प्रभाव' शीर्षक का यह ग्रंथ रचा है।

डॉ. राम गोपाल सिंह प्रतिभाशील और अनुसंधानप्रिय हैं। इस समय वे गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद के अनुवाद विभाग में वरिष्ठ प्राध्यापक एवं शोध निर्देशक हैं। विद्याव्यसनी होने से वे कठिनाइयाँ झेलते हुए 'अनुवाद भारती' अनुवाद पत्रिका प्रकाशित कर रहे हैं। 'शोध भारती' एवं 'हास्य-व्यंग्य भारती' पत्रिकाएँ भी वे नियमित रुप से निकाल रहे हैं । उन्होंने 1986में एम.फिल. में 'बैंकों में प्रयुक्त हिंदी की वाक्य रचना पर अध्ययन प्रस्तुत किया था तथा 1989में पी. एच.डी. में 'हिंदी वाक्य रचना पर अंग्रेजी का प्रभाव' पर कार्य किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ. सिह ने खड़ी बोली गद्य से अंग्रेजी की घनिष्ठता के उद्‌गम और ऐतिहासिक विकास का विवेचन प्रारंभिक अध्याय में किया है। प्रारंभ में ईसाई धर्म प्रचारक, उसके बाद पाठ्यग्रंथ निर्माता और उसके पश्चात व्याकरण, अंग्रेजी और हिन्दी का संबन्ध स्थापित किया है। राजभाषा हिन्दी के युग में हिन्दी का विकास पद-पद पर अंग्रेज़ी पर निर्भर रहा।

स्वतंत्र भारत के विश्वविद्यालयों में आधुनिक भाषाविज्ञान और अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान का अध्ययन एवं अनुसंधान हिन्दी के माध्यम से होने लगा। दिल्ली विश्वविद्यालय, केंद्रीय हिन्दी संस्थान, रायपुर विश्वविद्यालय आदि हिन्दी के भाषावैज्ञानिक अध्ययन के केंद्र बने। इनका संक्षिप्त परिचय डॉ. सिंह ने भूमिका में दिया है।

ग्रंथकार ने वाक्यों के सरल, मिश्र और संयुक्त नामक भेदों को बुनियादी तत्व के रूप में लिया है। सरल वाक्य में उद्देश्य व विधेय के अलावा पदबंधों का प्रयोग होता है। परंपरागत व्याकरण में फ्रेज के लिए वाक्यांश शब्द था। अब इसकी संकल्पना व शब्द में अतंर है। नया शब्द पदबंध नये हिन्दी व्याकरणों में वर्णित हैं। स्नातक व स्नातकोत्तर स्तर के हिन्दी छात्रों तथा प्राध्यापकों के लिए पदबंध और शेष अध्याय ज्ञानवर्धक हैं। लेखक ने अध्याय 4 में मिश्रवाक्य और अध्याय 5 में संयुक्त वाक्य का विस्तार से वर्णन किया है। उन्होंने मुख्यत: स्वतंत्र भारत में प्रकाशित पुस्तकों एवं हिन्दी पत्रिकाओं से बहुत बड़ी संख्या में उचित उदाहरण लिये हैं। जरूरत के अनुसार मध्ययुग के हिन्दी गद्य व पद्य की पंक्तियाँ भी उद्धृत की हैं। अंग्रेजी का प्रभाव आधुनिक युग में हास्यास्पद स्थिति तक पहुँचा है। इसके कुछ उदाहरण ग्रंथकार ने दिये हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

गली के किनारे, आज लगा है जिधर नल / एक दिन गिरे थे वहीं अंग्रेज़ कर्नल/ धोड़ाभगाडरके फौजी कर्नल के । प्राणों ने पाई ठंडक इंटर्नल।

इसके छठे अध्याय में विरामचिह्लों का विशद अध्ययन है जो कि इस ग्रंथ का सबसे महत्वपूर्ण प्रसंग है। हिन्दी को परंपरागत रूप से केवल पूर्णविराम चिह्न (।) प्राप्त है। अर्धविराम आदि के चिह्न अंग्रेजी से आये हैं। आज के गद्य-लेखन में विराम-चिह्नों का समुचित प्रयोग रचना का सौष्ठव बढ़ाता है। मेरी विनीत सम्मति में स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर के छात्रों को विरामचिह्न के प्रयोग का शास्त्रीय अध्ययय कराना चाहिए। परीक्षा में उचित विरामचिह्नों के उपयोग का प्रश्न भी देना होगा। इस अभ्यास से छात्र आगे चलकर कार्यालय में एवं साहित्यक्षेत्र में भी सुगठित वाक्य लिख सकेंगे।

आजकल अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के अंगभूत शैलीविज्ञान के आधार पर चुने लेखकों की कहानी, उपन्यास आदि का विश्लेषण किया जाता है। इसी के अंग के रूप में या स्वतंत्र रूप से उनकी वाक्य-रचना का विश्लेषण करके लेखक के साहित्यिक व्यक्तित्व का मूल्यांकन भी संभव है। आशा है, विद्वान लेखक डॉ. राम गोपाल सिंह इस दिशा में भी शोध करेंगे और कराएँगे।

चर्चित ग्रंथ: हिंदी वाक्य रचना पर अंग्रेजी का प्रभाव, लेखक: डॉ. राम गोपाल सिंह, प्रथम संस्करण,, 1997, प्रकाशक: पार्श्व प्रकाशन, अहमदाबाद, मूल्य-150-00 रु.।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलसीपरक पत्र-पत्रिकाएँ एवं प्रकाशन

— डॉ. गणेशदत्त सारस्वत

गोस्वामी तुलसीदास युगपुरुष हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा जन-जीवन को उदात्त जीवन जीने की प्रेरणा प्रदान की है। उनकी रचनाएँ, विशेषरूप से 'रामचरितमानस', 'बुध विश्राम सकल जन रंजनि' हैं, इसीलिए प्रत्येक वर्ग के पाठक का कण्ठहार हैं। सामान्य से सामान्य व्यक्ति से लेकर विद्वान से विद्वान व्यक्ति तक - सभी इन रचनाओं का रसास्वादन कर अपूर्व आनन्द का अनुभव करते हैं। तुलसी सच्चे अर्थों में कवि चक्रवर्ती हैं। चक्रवर्ती कवि वह है जिसका काव्य राजमहलों से लेकर झोपड़ियों तक पढ़ा जाए।

तुलसी के काव्य के विभिन्न पक्षों पर जितना विशद तथा गम्भीर अध्ययन हिन्दी में हुआ है, उतना अन्य किसी कवि का नहीं। तुलसी पर प्रकाशित शोध ग्रन्थों की संख्या छियत्तर है तथा अप्रकाशित शोध ग्रन्थ चार सौ एक हैं। इनका विस्तृत विवरण 'तुलसीसाहित्य सन्दर्भ कोश' (लेखक श्रीकृष्णाचार्य) में पृष्ठ संख्या 151 से 213 तक उपलब्ध है। तुलसी के व्यक्तित्व पर 145 ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं तथा कृतित्व पर 131। विदेशी शोधकर्ताओं में उल्लेख्य हैं-एल.पी. टैसीटोरी, जे.एन. कारपेन्टर, फादर कामिल बुल्के तथा शार्लोत वोदविल। टैसीटोरी ने 'तुलसीकृत रामचरितमानस और बाल्मीकि रामायण का तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर शोध प्रबन्ध लिखा, जिसे इटली के फ्लोरेन्स विश्वविद्यालय द्वारा डी.लिट्. की उपाधि के लिए सन् 1919 में स्वीकृत किया। फादर कामिल बुल्के तो तुलसीमय ही थे। उन्होंने 'रामकथा : उत्पत्ति और विकास' लिखकर इलाहाबाद विश्वविद्यालय से 1949 ई. में पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। शार्लोत वोदविल ने 'तुलसीदास रचित रामचरितमानस का मूलाधार व रचना विषयक समालोचनात्मक अध्ययन' शीर्षक शोध प्रबन्ध फ्रांस के पेरिस विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया तथा 1950 ई. में डी.लिट्. की उपाधि प्राप्त की।

अन्य विदेशी विद्वानों में जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन तथा ए.पी.वारान्निकोव प्रमुख हैं। जार्ज ग्रियर्सन ने 'नोट्स आन तुलसीदास' लिखा, जिसका अनुवाद 'तुलसीदास : रचना और सन्दर्भ' के रूप में हुआ। अनुवादक थे : शान्ता सिंह तथा भुवनेश्वर नाथ। सम्पादन किया है : श्री भगवती प्रसाद सिंह ने। वारान्निकोव की 'मानस की रूसी भूमिका' अपने समय में काफी चर्चित हुई।

इन शोध ग्रन्थों के अतिरिक्त तुलसी के साहित्य पर स्वतंत्र कार्य भी हुए हैं, जो पर्याप्त मौलिक हैं। तुलसी सम्बन्धी सृजनात्मक साहित्य की कई कोटियाँ हैं। उपन्यास, एकांकी, कथा-कहानी, काव्य, चित्रावली, नाटक, प्रबन्ध संगीत तथा बालसाहित्य आदि विभिन्न रूपों में यह साहित्य उपलब्ध है। उपन्यासों में श्री अमृतलाल नागर का 'मानस का हंस', डॉ. रमानाथ त्रिपाठी का 'नूतन राम कथा', श्री रांगेय राघव का 'रत्ना की बात' तथा विश्वम्भर सहाय 'प्रेमी' का 'तुलसी रामकथा' उल्लेखनीय हैं। 'मानस का हंस' के सन् 1970 से 1988 ई. तक कई संस्करण प्रकाशित हुए हैं। डॉ. त्रिपाठी की 'राम गाथा'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नूतन राम कथा' का परिवर्धित रूप है। रांगेय राघव का उपन्यास 'रत्ना की बात' जहाँ 1974 में प्रकाशित हुआ वहीं 'प्रेमी' जी की औपन्यासिक कृति 'तुलसी राम कथा' सन् 1975 ई. में सर्वजनसुलभ हुई। इसमें चार खण्ड हैं। पहला खण्ड रामजन्म से सम्बन्धित है, दूसरा राम वनगमन से, तीसरा सीताहरण से तथा चौथा लंकाविजय से सम्बद्ध है।

एकांकी नाटकों में श्री मदनगोपाल सिंहल का 'तुलसी और सूर-दो एकांकी' तथा डॉ. कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह का 'तुलसीदास' उल्लेखनीय हैं। 'तुलसी और सूर-दो एकांकी, में कुल 88 पृष्ठ हैं, जिनमें तुलसीदास से सम्बन्धित एकांकी 52 पृष्ठों का है तथा 53 से 88 पृष्ठों में सूरदास विषयक एकांकी है। गोपाल प्रिन्टिंग प्रेस, मेरठ से सन् 1954 ई. में इसका प्रकाशन हुआ। ये नाटक विशेष रूप से किशोरों के लिए ही हैं। डॉ. कुँवर चन्द्रप्रकाश सिह का 'तुलसीदास' नामक एकांकी उनके 'अग्निपरीक्षा' नामक एकांकी संग्रह का दूसरा एकांकी नाटक है, जिसमें अनुभूति की उदात्तता तथा अभिव्यक्ति की कलात्मकता अपने पूर्ण वैभव के साथ विद्यमान है तथा जो मन मुग्ध किए बिना नहीं रहती। डॉ. प्रेमनारायण टण्डन का एकांकी 'तुलसी-एक झलक' सहृदयों द्वारा काफी सराहा गया है। कथा-कहानी में श्री अमरनाथ शुक्ल की 'रामचरित मानस की प्रेरक कथाएँ' बालकों के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। सन् 1973 में विद्याप्रकाशन मंदिर, दिल्ली से इसका प्रकाशन हुआ। श्री हरि जोशी एवं हीरालाल शुक्ल के संयुक्त सम्पादकत्व में 'गुसाई तुलसीदास' का विश्वभारती प्रकाशन नागपुर से 1974 ई. में प्रकाशन हुआ। तुलसीदास के जीवन से सम्बन्धित पन्द्रह कहानियाँ इस पुस्तक में हैं।

काव्यों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है। श्रीकृष्ण बिहारी शुक्ल का 'मतवाला माँझी-रामकेवट संवाद' (जो तुलसी के केवट-प्रसंग को आत्मसात् किए हुए है), श्री गोमती प्रसाद पाण्डेय 'कुमुदेश' की आठ छोटे-छोटे सर्गों में काव्यात्मक रचना 'तुलसी रत्नावली', 'डॉ. प्रेमनारायण टण्डन का खण्डकाव्य 'रत्ना की बात', डॉ. परशुराम तिवारी 'विरही' की 'रत्ना के राम', बैजनाथ कूर्मवंशी की 'छन्दावली रामायण सटीक', जो कई छन्दों में 'रामचरित मानस' का रूपान्तरण है, मतवाल मंगल का 'तुलसीयुग', महावीरप्रसाद 'विरही' का 'मानस गीत', राजेन्द्र कुमार का 'हम चाकर रघुवीर के', 'डॉ. राम अकबाल त्रिपाठी 'अनजान' का 'तुलसीदास', डॉ. रामदत्त भारद्वाज का प्रबन्ध काव्य 'रत्नावली', रामवचन द्विवेदी अरविन्द की रचना 'तुलसी की नारी', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का 'तुलसीदास', पं. सोहन लाल द्विवेदी का 'तुलसीदास', दीन मुहम्मद 'दीन' की काव्यकृति 'हुलसी के तुलसी' तथा स्नेह ओझा का 'तुलसीदास', जो ब्रजभाषा का सशक्त खंडकाव्य है, इस विधा की कुछ उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। गणेशदत्त सारस्वत की 'तुलसी की कला' काव्य के क्षेत्र में अत्यन्त अभिनव प्रयोग है क्योंकि इसमें तुलसी की कला की समीक्षा न करके उनकी काव्य कृतियों को काव्य की कथावस्तु बनाया गया है। उल्लेखनीय यह है कि मानस से आरम्भ कर रामाज्ञा प्रश्न तक गोस्वामी जी की रचनाओं की कला का यह अभिनन्दन-क्रम मात्र प्रशस्ति पाठ नहीं है। उसमें स्थान-स्थान पर संवेदनात्मक समीक्षा के ऐसे स्वर और स्तर मिलते हैं, जो परिष्कृत पाठक की रुचि को वैविध्य के विपुल आयाम प्रदान करते हैं। कृति की यह विशेषता उसे पुनरुक्ति से मुक्त करती है, बासीपन से बचाती है। (प्राक्कथन, डॉ. कुँवरचन्द्र प्रकाश सिंह, पृष्ठ संख्या 8)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तुलसी की कला' आद्यन्त सवैया छन्द में खड़ी बोली की रचना है। सवैया का नाद-सौंदर्य और स्वर का सभंग आवर्तन बड़ा सम्मोहक होता है। कवि की इस-संवेदना और सवैया के संगीत के योग से यह काव्य बड़ा मनोरम बन गया है। डॉ. भगीरथ मिश्र के अनुसार इस प्रकार भक्तियुग की रचना की विशिष्टता, रीतियुग के छन्द में ढलकर वर्तमान युग की भाषा में उतरी है। वर्णों का नाद, शब्दों की संमति एवं भाव की माधुरी इस रचना को आनन्द की त्रिवेणी बना देती है (आशीर्वचन, पृष्ठ संख्या 6)।

श्री रामानन्द चौधरी की 'रामायण भाव चित्रावली', सुरेशचन्द्र शर्मा की 'तुलसीदास चित्रावली' तथा रत्नाकर पाण्डेय की 'सचित्र रामचरित मानस कथा' चित्रावली विधा की उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। इनमें तुलसी तथा उनकी रामकथा का सुन्दर चित्रांकन है। नाटकों में उल्लेखनीय हैं - बदरीनाथ भट्ट का तुलसीदास, गोविन्द वल्लभ पंत का श्री 'तुलसीदास', डॉ. राम कुमार वर्मा का 'संत तुलसीदास' तथा पं. श्री राम शर्मा का 'कवि तुलसीदास।' पं. श्रीराम शर्मा के इस नाटक के जल्दी-जल्दी तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। पहला संस्करण 1952 में निकला, दूसरा 1953 में तथा तीसरा 1954 में।

श्री उमाकान्त मालवीय का 'राघवराग' ललित निबन्धों का सुन्दर संकलन है, जिसमें रामकथा के सन्दर्भ में चौदह निबन्ध हैं। इसके तीन संस्करण निकल चुके हैं। तीसरा संस्करण सन् 1987 ई. में निकला है। पं. बद्रीनारायण तिवारी द्वारा सम्पादित 'गोस्वामी तुलसीदास समाज के पथ प्रदर्शक', 'तुलसी के राम', 'रामकथा और मुस्लिम साहित्यकार,' 'तुलसी एक केन्द्रबिन्दुः शोधकर्ता शत-शत' तथा 'मानसमोती' भी उपयोगी संकलन हैं। 'गोस्वामी तुलसीदास समाज के पथ प्रदर्शक' में चालीस विद्वानों के, 'तुलसी के राम' में बारह विद्वानों के, 'मानस पंचामृत' में पाँच विद्वानों के तथा 'राम कथा और मुस्लिम साहित्यकार' में 113 विद्वानों के लेख एवं कविताएँ हैं। 'तुलसी एक केन्द्रबिन्दुः शोधकर्ता शत-शत' में पहले तुलसी पर किए गए शोध कार्यों का विवरण है, फिर दस हिन्दी के तथा चार अंग्रेजी के निबन्ध हैं। विशेषता यह है कि इसमें विदेशी शोधकर्ताओं के निबंध दिए हुए हैं। 'मानस मोती' में तुलसी तथा मानस के सम्बन्ध में देश-विदेश के विद्वानों के विचारों का संक्षिप्त संकलन है। श्री शम्भूनाथ आई.ए.एस. के 'रामकथा' के नये आयाम में रामकथा का नये ढंग से मूल्यांकन है, जो आधुनिक बोध सम्मत है। पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित 'अद्‌भुत बानी' में तुलसी की एक अर्धालि के आधार पर उनके भाषा सम्बन्धी विचारों का कुछ विशिष्ट विद्वानों के द्वारा विवेचन है। 'तुलसी का मानवतावाद' डॉ. जगदीश्वर प्रसाद के दस निबन्धों का संकलन है। इन निबन्धों के माध्यम से लेखक ने यह सिद्ध करने का सार्थक प्रयत्न किया है कि तुलसी अपने युग की समस्याओं से प्रेरित होते हुए भी अपने युग की सीमाओं से बँधे हुए नहीं हैं। उसकी सीमाओं को तोड़ते हुए वे शाश्वत मानवता की समस्याओं का समाधान ढूढ़ते हैं। यही कारण है कि आज की विशेष परिस्थितियों में भी वे सार्थक बने हुए हैं। 'विश्व कवि गोस्वामी तुलसीदास' साहित्यमण्डल श्रीनाथ द्वारा (राजस्थान) का प्रकाशन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके सम्पादक श्री भगवती प्रसाद जी देवपुरा हैं। इसमें पच्चीस कवियों का तुलसी-स्तवन है, बारह विद्वतापूर्ण आलेख हैं तथा गोस्वामी तुलसीदास पर 71 साहित्यकारों के विचार हैं। अन्त में, तुलसीदास के प्रति कुछ सिरफिरों की टिप्पणियाँ दी हुई हैं। 'रामचरितमानस में ऋषियों की भूमिका' डॉ. सीताराम दिवाकर का शोधपरक ग्रन्थ है। इसमें उनका मुख्य उद्देश्य मानस में ऋषियों की भूमिका पर प्रकाश डालना है। उनकी यह मान्यता है कि 'मानस' का प्रमुख लक्ष्य ऋषियों द्वारा पूरा हुआ है क्योंकि 'मानस' के ऋषि तुलसी के विचारों के प्रवक्ता रहे हैं। तुलसी स्वयं मानस में बार-बार ऋषियों के रूप में उपस्थित होते रहे हैं। उन्होंने लोकमत, वेदमत, कर्मकाण्ड, ज्ञान और भक्ति आदि अनेकानेक धार्मिक सम्प्रदायों का समन्वय किया है, जो ऋषियों के सहयोग से ही पूरा हुआ है।

इस ग्रन्थ में लेखक द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि ये ऋषि भारतीय संस्कृति के विदग्ध व्याख्याता हैं तथा 'यन्न मानसे तन्न मानसे' की सूक्ति इन्हीं से प्राणवान हुई है। तुलसी की पंचशती के अवसर पर इस ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ है। इसमें सात अध्याय हैं - रामकथा और तुलसी, ऋषि परम्परा : भूमिका का अभिप्राय, मानस का कथा शिल्प और ऋषि, मानस का सामाजिक मत और ऋषि, मानस का धार्मिक मत और ऋषि, मानस का दार्शनिक मत और ऋषि तथा मानस में भक्ति भावना और ऋषि।

डॉ. दिवाकर के 'रामचरित मानस में भरत की भूमिका', 'रामचरित मानस में भक्ति भावना' तथा 'रामचरित मानस में नैतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति' आदि ग्रन्थ भी इसी कोटि के हैं। 'संस्कृत और हिन्दी साहित्य में भरत का स्वरूप' डॉ. दिवाकर का डी.लिट्. का शोधप्रबन्ध है।

डॉ. सत्यप्रकाश अग्रवाल का 'मानस एवं गीत : लोगमंगलगुंजिता' कई दृष्टियों से अनुपम ग्रन्थ है। इसमें जहाँ वेद तथा उपनिषद आदि के चुने हुए लोकहित-वर्धक प्रसंगों का उल्लेख है, वहीं गीता की व्याख्या सम्पूर्ण लोकहित शास्त्र के रूप में की गई है। उसी के साथ ही, 'रामचरितमानस' का विवेचन सकल मलिमलुष विध्वंसक शास्त्र के रूप में किया गया है। इस पुस्तक में नौ अध्याय हैं - गीता एवं मानस - लोकमंगल समीक्षा के दो केन्द्र, लोकहित का सन्देश देने वाले दस प्रमुख शब्द या शब्द समूह, प्रभु प्रणीत धर्म तथा सर्वहित प्राप्ति साधन-मत्कर्म या रामकाज, योगारूढ़ वृत्ति अथवा सन्त लक्षण, देशकालोचित सर्वभूतहित अथवा सकल मगंल, लोकसंग्रह अथवा जगमंगल, निर्मयो निहंकारभाव एवं व्यावहारिक समदृष्टि, लोकहितनाशक वृत्तियों के दोष-दर्शन तथा लोकहितवर्धक गुणों की प्रशंसा तथा लोगमंगल प्रवाह तीव्रता बनाने की चाह। परिशिष्ट में अध्याय हैं- गीता में वर्णित योगारूढ़ वृत्ति के छह प्रसंग, जगमंगल तथा 'सब कहँ हित होई' की आरम्भिक घोषणा करनेवाला बालकाण्ड का प्रसंग, जगमंगल से विपरीत सामाजिक स्थिति का उत्तरकाण्ड में वर्णन तथा जगमंगल पर आधारित आदर्शसमाज का उत्तरकाण्ड में वणनि-रामराज्य के रूप में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकमंगल के प्रवाह को तीव्रतर कैसे बनाया जाए, इस उद्‌देश्य की प्राप्ति के लिए दस सूत्री कार्यक्रम की सांकेतिक रूपरेखा भी पुस्तक के अन्त में दी हुई है। लोकहित का सशक्त विधान करनेवाली इस परम उपयोगी पुस्तक का प्रकाशन सन् 1998 में सुश्री उर्मिला अग्रवाल के द्वारा 1193, राइडर मार्क रो, कोलम्बिया, मैरीलैण्ड 21044 यू.एस.ए. से हुआ है। 'श्री रामचरित मानस में चित्रित राजनीति और उसका आदर्श' डॉ. (कु.) कामिनी महेन्द्र का समीक्षात्मक ग्रन्थ है, जो सन् 1994 ई. में साहित्यकार कल्याण परिषद रायबरेली से प्रकाशित हुआ है। इसमें तुलसी के राजनीतिक विचारों को, उनकी रामराज्य की परिकल्पना को वाणी प्रदान करने का सार्थक उपक्रम है। अन्त में 'क्या तुलसीदास राजनीतिज्ञ थे' इस प्रश्न का भी सारगर्भित उत्तर सप्रमाण देने का प्रयत्न किया गया है।

'श्री रामकथामन्दाकिनी' तथा 'संगीत रामायण' राम कथा के स्वरबद्ध रूप हैं। 'श्री रामकथा मन्दाकिनी' की स्वरलिपिकार हैं- सुश्री गोदावरी बाई साठे । इसमें 'रामचरित मानस' तथा 'कवितावली' के चुने हुए पदों से संकलित स्वरबद्ध सम्पूर्ण रामकथा है। मानस संघ, सतना (म.प्र.) द्वारा प्रकाशित 'संगीत रामायण' के स्वरलिपिकार श्री शिवानन्द सरस्वती हैं। इसका प्रकाशन सन् 1944 में हुआ है। 'रामचिरत मानस की प्रेरक कथाएँ' (अमरनाथ शुक्ल), 'तुलसीदास' (देवेन्द्र सिंह), 'राम कथा' (चन्द्रपाल सिंह यादव 'मयंक'), 'तुलसीमहाकाव्य (रामदेव सिंह 'कलाधर'), 'पंछीरामायण' (सरदार सोना सिंह 'पंछी') तथा 'श्री रामशतक' (राष्ट्रबंधु) तुलसी से सम्बन्धित उत्कृष्ट बालसाहित्य है। इस कोटि की अन्य श्रेष्ठ रचनाएँ हैं - 'गोस्वामी तुलसीदास' (वीरेन्द्र कुमार गुप्त) तथा 'बालमानस' (शिवदयाल)। 'बालमानस' में गद्य में बच्चों के लिए रामचरितमानस की कथा दी हुई है। बीच-बीच में दोहा चौपाई भी हैं। 'मानस पहेलियाँ' डॉ. रामस्वरूप खरे का पहेलियों का काव्य-संयोजन है, जो. 'रामचरितमानस' पर आधारित है। पहेली बाल साहित्य की विशिष्ट विधा है। यद्यपि वर्तमान युग में उसका लोप-सा होता जा रहा है तथापि बालकों को अपनी ओर आकर्पित करने की इसमें अपूर्व क्षमता विद्यमान है।

डॉ. खरे की यह कृति रामचरितमानस पर पहेलियों की सम्भवतः पहली पुस्तक है। मानससंगम, कानपुर द्वारा 1998 में प्रकाशित ये पहेलियाँ बालकों के ज्ञानवर्धन में निश्चय ही सहायक हैं। इस पुस्तक में 1008 पहेलियाँ हैं, जो मानस के बालकाण्ड से सम्बन्धित हैं। इनमें को अधिकांश पहेलियाँ 'राष्ट्रधर्म' (लखनऊ) में प्रकाशित हो चुकी हैं। मनोरंजनार्थ दो पहेलियाँ सेवा में सादर प्रस्तुत हैं :

(1) सीय, राममय जान जगत सब, तुलसी ने नत किया प्रणाम ।
काण्ड कौन सा किस दोहे का, चोपाई है कौन ललाम ?
(सातवें दोहे की दूसरी चौपाई)

(2) पार्वती का जन्म सुन, आया कौन तुरन्त ?
वीणा बजा ईश गुण गाते, जिनका आदि न अन्त। (ब्रह्मापुत्र नारद)

इधर कई कोशों की भी रचना हुई है। इनमें उल्लेख्य हैं 'तुलसी साहित्य सन्दर्भ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोश', 'मानसवृत्त कोश', 'रामचरितमानस शब्द कोप' तथा 'मानस अनुक्रमणिका' आदि। 'तुलसीसाहित्य सन्दर्भ कोश' के रचनाकार हैं- कृष्णचार्य जी। इसका प्रकाशन उनकी धर्मपत्नी ने लेखक के मरणोपरान्त सन् 1995 ई. में साहित्य निकेतन, कानपुर से कराया है। इस ग्रन्थ में आठ अध्याय हैं : गोस्वामी तुलसीदास रचित मुद्रित ग्रन्थ, तुलसी व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व, शोध साहित्य, तुलसी सम्बन्धी सृजनात्मक साहित्य, पत्र-पत्रिकाएँ जीवनी एवं विविध तथा अनुवाद एवं अन्य भारतीय भाषाओं में तुलसी सम्बन्धी साहित्य। तुलसी के रचनाधर्मी व्यक्तित्व पर ऐसा सर्वांगपूर्ण सन्दर्भग्रन्थ निश्चय ही दुर्लभ है। लेखक की सुदीर्घ साहित्य-साधना तथा तुलसी के साहित्य का परिपक्व अनुशीलन इस ग्रन्थ में निश्चय ही फलीभूत हुआ है। 'मानसवृत्त कोश' के प्रणेता डॉ. कैलाशनाथ मिश्र हैं। इस ग्रन्थ में वृत्त विवृत्तिका तथा मानसबन्ध विवरणिकाओं के अतिरिक्त अकार क्रम से चौपाई कोश, छन्दकोश, सोरठाकोश दोहा कोश, श्लोक कोश, पूर्ण चौपाई द्विरुक्तियाँ तथा अर्द्धाली द्विरुक्तियाँ दी हुई हैं। मानस सांख्यिकी विश्लेषण एवं सम्पूर्ण छन्द संख्या सरणी से ग्रन्थ की उपयोगिता द्विगुणित हो गई है। इसका प्रकाशन भी राम सेवा संस्थान, कानपुर से सन् 1996 ई. में हुआ है। 'रामचरितमानस शब्द कोष' के प्रणेता शिवचरण अग्निहोत्री 'तृषित' हैं। इसमें प्रत्येक काण्ड के कठिन शब्दों के पहले अर्थ दिए गए हैं। फिर उदाहरण स्वरूप दोहा, चौपाई तथा श्लोक आदि उद्धृत किए गए हैं। मानस के अध्येताओं का मार्ग प्रशस्त करने में यह ग्रन्थ पर्याप्त सहायक है। इसका प्रकाशन सन् 1997 में श्रीमद् भगवदगीता शोध संस्थान विलग्राम (हरदोई) से हुआ है।

अखिल भारतीय अनुवाद परिषद के अध्यक्ष तथा 'अनुवाद भारती', 'शोधभारती' एवं 'हास्यव्यंग भारती' के सम्पादक डॉ. राम गोपाल सिंह के सत्प्रयास से तुलसी पंचशती के अवसर पर 1988 में सम्पादित ग्रंथ 'तुलसी के काव्यादर्श' का प्रकाशन किया गया । 272 पृष्ठ के इस ग्रंथ में तुलसी साहित्य विषयक कुल 37 आलेख प्रकाशित किए गए हैं । ये सभी आलेख अपने-अपने ढंग के सर्वथा अनूठे हैं तथा तुलसी विषयक मौलिक विचारों को संवहित करते हैं । इस ग्रंथ के लेखकों ने अपने-अपने विषय के अनुरूप काव्यादर्शों के अवगाहन के लिए तुलसी-काव्य पर अपनी पैनो दृष्टि डाली है तथा संबंधित विचार बिंदुओं को तुलसी-काव्य की सीमाओं में रहकर ही शृंखलाबद्धकिया है । 'मानस अनुक्रमणिका' के सम्पादक डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठी तथ. डॉ. उषा द्विवेदी हैं। श्री बड़ा बाजार कुमार सभा पुस्तकालय, कलकत्ता से सन् 1998 में इसका प्रकाशन हुआ है। इसमें दो खण्ड हैं। प्रथम खण्ड आद्याक्षरी है तथा द्वितीय मध्याक्षरी। प्रथम खण्ड में अर्द्धाली के प्रथम अंश को तथा द्वितीय खण्ड में अद्धाली के द्वितीय अंश को अकारादि क्रम से प्रस्तुत किया गया है। उदाहरणार्थ -

सीयराममय सब जग जानी करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

इस अर्द्धाली का पहला अंश 'सीयराममय सब जग जानी' प्रथम खण्ड (आद्याक्षरी) में है तथा दूसरा अंश 'करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी' द्वितीय खण्ड (मध्याक्षरी) के अन्तर्गत रखा गया है । सन्दर्भ ग्रन्थ के रूप में यह अनुक्रमणिका भी अत्यन्त उपयोगी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलसी तथा उनके साहित्य पर केन्द्रित पत्र-पत्रिकाओं तथा स्मारिकाओं की संख्या भी शताधिक है। तुलसीकृत रामायण की मानस प्रचारिका पहली स्मारिका है, जो मुंशी नवल किशोर प्रेस, लखनऊ से सन् 1988 ई. में प्रकाशित हुई। इसके सम्पादक श्री जानकीदास थे। कालिका प्रसाद सिंह ने 1988 में 'मानस तरंगिणी निकाली' । 'तुलसी सुधाकर' का सम्पादन सुधाकर द्विवेदी ने किया। इसका प्रकाशन बनारस के चन्द्रप्रभा कम्पनी छापखाने से 1899 में हुआ । 196 पृष्ठीय इस स्मारिका का पूर्वार्द्ध हिन्दी में है तथा उत्तरार्द्ध अंग्रेजी में। अंग्रेजी खण्ड का शीर्षक है - 'Tulsi Sudhakar or Kundaliya on Tulsidas's Satsaiya' । 'मानस पत्रिका' का संयुक्त सम्पादन सुधाकर द्विवेदी तथा सूर्यप्रसाद मिश्र ने किया। भार्गव बुक डिपो के प्रबन्ध से चन्द्रप्रभा प्रेस, वाराणसी से 1904 में इस वार्षिक पत्रिका का प्रकाशन हुआ। यह पत्रिका 'मानस' और उसके संस्कृत अनुवाद को लेकर निकली थी। इसके पचीसवें अंक में इसकी रूपरेखा का उल्लेख इस प्रकार है - 'गोसाईं श्री तुलसीदास जी के रामायण पर खण्डन-मण्डन सहित अनेक प्राचीन और नवीन विद्वानों के व्याख्यान।' इससे सिद्ध होता है कि इसका उद्देश्य विद्वानों के रामायण-विषयक व्याख्यान प्रकाशित करना था। [सरस्वती, 1904, पृष्ठ संख्या 400]। आगे चलकर 1904 ई. से इसका स्वरूप मासिक हो गया। सन् 1909 में इसका पुन: प्रकाशन हुआ तथा 23-24 अंक निकलने के बाद यह पत्रिका बन्द हो गई। चन्द्रमौलि सुकुल ने 1913 में इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद से 'मानस दर्पण' निकाला जो अत्यावधि में ही काल-कवलित हो गया। 'रामचरित कथामृत' सचित्र साप्ताहिक पत्रिका थी। इसके टीकाकार तथा सम्पादक प्रो. बैजनाथ कोटी थे। 1927 ई. में इसका प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। 48 पृष्ठों की इस पत्रिका का रामायण कथामृत कार्यालय, झाँसी से हुआ। सन् 1938 में लखनऊ के गंगा ग्रन्थागार से रामायण प्रथम खण्ड का प्रकाशन हुआ। 40 पृष्ठों की इस सचित्र पत्रिका के सम्पादक एवं प्रकाशक दुलारेलाल भार्गव थे। 'कल्याण' का मानसांक-अंजन नन्दन शरण के सम्पादकत्व में जून 1939 में निकला। श्री नारायण सिंह ने पटना परिषद पत्रिका का विशेषांक हिन्दी का तुलसीपूर्व मुद्रित राम साहित्य शीर्षक से 1939 में सर्वजन सुलभ किया। इसमें पृष्ठों की कुल संख्या 114 थी। बलदेव प्रसाद मिश्र का 'मानस मन्थन' नबल किशोर प्रेस, लखनऊ से 1940 में निकला । नवम्बर 1941 में अंजनीनन्दन शरण ने 'मानस संघ' के तत्वावधान में 'मानस मणि' मासिक का प्रकाशन प्रारम्भ किया। वर्तमान में इसके सम्पादक डॉ. हरिहरनाथ टण्डन हैं। 'नवीन भारत तुलसी अंक' मार्च 1941 में निकला। सम्पादक थें कालीचरण अग्रवाल तथा शिवनारायण माहेश्वरी। पृष्ठ संख्या थी 236। विषय था 'तुलसीचरित की अप्रामाणिकता।' रत्नावली चरित भी इसमें दिया हुआ था । इसी क्रम में रत्नावली के दोहे भी इस अंक में प्रकाशित हुए थे। 1941 में ही रामचन्द्र वैद्य शास्त्री ने अलीगढ़ के सुधावर्षक प्रेस से 'तुलसी समाचार' का प्रकाशन किया। 'प्रेमसन्देश' का 'मानस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृति अंक' वृन्दावन के प्रेमधाम प्रेस से 1958 में निकला। 258 पृष्ठ के इस अंक के सम्पादक गोस्वामी विन्दु जी थे । इस अंक के मुख्य आकर्षण थे- डॉ. बलदेवप्रसाद मिश्र का लेख 'उक्तिसौष्ठव', बाबा राघवदास का 'स्वामित्व विसर्जन,' रामशंकर मिश्र का 'अमोघ औरषधि मानस', 'उमामहेश अवस्थी' का 'मानस में मन और उसका नियन्त्रण', वासुदेवाचार्य का 'मानस का नागरिक जीवन' तथा चन्द्रशेखर पाण्डेय का 'मानस के सन्त'। पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की रचना भी इस अंक का आकर्षण थी। 'मानस मयूर' शोधपरक त्रैमासिक पत्रिका थी। रामदास शास्त्री ने इसका सम्पादन किया था। इसका पहला अंक जून 1964 में हावड़ा से निकला। इसके परामर्श-मण्डल में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डॉ. बलदेव मिश्र, पं. बलदेव प्रसाद उपाध्याय तथा आचार्य पं. शान्तिप्रसाद प्रमृति विद्वान थे। 'परिशोध' का ग्यारहवाँ अंक 'तुलसी विशेषांक' के रूप में 1970 में निकला। पंजाब विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की यह पत्रिका थी। इन्द्रनाथ मदान तथा मैथिली प्रसाद भारद्वाज इसके संयुक्त सम्पादक थे। इसमें जिन लेखों को वरीयता प्रदान की गई थी, उनमें मुख्य हैं - मैथिली प्रसाद भारद्वाज का 'महाकवि तुलसीदास', रमेश कुन्तल मेघ का 'एक मध्यकालीन कवि के आत्मसंघर्ष की फांतासी : विनय पित्रका', रामरतन भटनागर का 'तुलसी की रचनाओं में सांस्कृतिक पतन की अनुभूति', पुरुषोत्तम शर्मा का 'काम की हरिणग्रन्थी से शोभाकुल तुलसी का चंचल काव्य : रामलला नहछू', गोपीनाथ तिवारी का 'शिवकृत रामायण : रामचरित मानस का नामकरण', धर्मपाल सैनी का 'भारतीय संस्कृति उन्नायक तुलसी', नारायण प्रसाद वाजपेयी का 'तुलसी के माया सम्बन्धी विचार' प्रकाश 'अग्नि' का 'तुलसी के रामकाव्य में तान्त्रिक प्रवृतियाँ', जयप्रकाश शर्मा का 'पुनः सृष्टि का अद्‌भुत सृष्टा', श्रीधर सिंह का 'तुलसी युगबोध और उसकी कालजयी अभिव्यक्ति', परेश का 'तुलसी और गालिब' तथा मैथिलीशरण भारद्वाज का 'तुलसी के राम : आदर्शों का नवमूल्यांकन।'

'मानस संगम' कानपुर के द्वारा श्री बद्रीनारायण तिवारी के संयोजकत्व में सन् 1970 से निरन्तर प्रकाशित हो रही 'मानस संगम स्मारिका' वार्षिक पत्रिका है। इसमें देश-विदेश के शीर्षस्थ रचनाकारों की सहभागिता रहती है। प्रारम्भ में इसके सम्पादक श्री ललित मोहन अवस्थी थे, वर्तमान में मदन मोहन शर्मा हैं। तीस विद्वानों का सम्पादक मण्डल भी है। परामर्श मण्डल में डॉ. शिवमंगल सिह सुमन, डॉ. विष्णुकान्त शास्त्री तथा डॉ. लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' प्रभृति कई विद्वानों का नामोल्लेख है। ये स्मारिकाएँ तो एक प्रकार से तुलसी तथा उनके साहित्य का विश्वकोश ही हैं, जो गुण तथा परिमाण-दोनों ही दृष्टियों से हिन्दी जगत में नये आयाम स्थापित कर रही हैं। 1971 में विश्वज्योति का 'रामायण' अंक निकला, जो जून तथा जुलाई का संयुक्तांक है। 'कल्याण' का रामांक 197२ में प्रकाश में आया। चिमनलाल गोस्वामी ने इसका सम्पादन किया है। सात सौ पृष्ठों का यह विशेपांक है, जो गोरखपुर के गीता प्रेस से प्रकाशित हुआ है। 1972 में ही श्री वि[illegible] की पत्रिका 'अनुशीलन'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का तीसरा अंक 'रामकाव्य विशेषांक' प्रकाशित हुआ। 184 पृष्ठीय इस अंक में कई लेख उल्लेख्य हैं : रामरतन भटनागर का 'तुलसी का सौन्दर्य बोध', रामेश्वर दयाल अग्रवाल का 'कम्बन और तुलसी', आर.सी.देव का 'कन्नड़ में रामायण', एम.एस. कृष्णमूर्ति का 'हिन्दी और कन्नड के राम काव्य' तथा रामचन्द्र स्वामी का 'तेलुगु में रामकाव्य' आदि। जम्मू विश्वविद्यालय ने 1973 में 'तुलसी विशेषांक' का प्रकाशन किया। 'तथ्य' त्रैमासिक के 'तुलसी विशेषांक' का प्रकाशन भी उसी वर्ष बालकमुकुन्द मिश्र के सम्पादकत्व में हुआ। इसमें प्रकाशित सभी लेख तुलसी के कर्तृत्व से ही सम्बन्धित हैं। तुलसी प्रदक्षिणा (सं. दयानन्द श्रीवास्तव), तुलसी स्मारिका (गिरिराजशरण अग्रवाल), मानसवाती माला (व्रज समिति, मथुरा, 'समाज सेवा' का 'रामायण अंक' (भोपाल), 'युवक' का 'तुलसी विशेषांक' (आगरा), 'कादम्बिनी' का रामकथा विशेषांक (राजेंद्र अवस्थी) आदि कई विशेषांक 1973 में ही प्रकाशित हुए । मानस चतुश्शती वर्ष होने के कारण सभी स्तरीय पत्रिकाओं ने तुलसी कथा -रामकथा को केन्द्रित कर अपने विशेषांक निकाले। इलाहाबाद की पत्थरपट्टी रामलीला की स्मारिका भी इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है। प्रतिवर्ष इसका प्रकाशन की बृहद् रूप में होता है। दो सौ से अधिक पृष्ठों की यह स्मारिका अनेक चित्रों से सुसज्जित होती है। श्री हरिमाहेन मालवीय इसके सम्पादक हैं। वे इसकी स्तरीयता सुरक्षित रखने में विशेष रुप से सावधान रहते हैं।

'सरस्वती' का मानस विशेषांक (पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी) एक वर्ष बाद 1974 में निकला। इसमें शीर्षस्थ विद्वानों के तुलसी तथा मानस पर उच्चस्तरीय लेख तो हैं ही, मुख्य आकर्षण इसका सम्पादकीय है, जो मानसकार के चित्रों पर आधारित है। मानस चतुश्शती समिति 'टीकमगढ़ (म.प्र.) की ओर से कला परिषद' टीकमगढ़ ने सन 1975 की रामनवमी के अवसर पर 'मानस मनीषा' नामक पुस्तकाकार स्मारिका का प्रकाशन किया। इसके प्रधान सम्पादक थे डॉ. गंगाप्रसाद गुप्त बरसैयाँ तथा सहयोगी सम्पादक थे- श्रीकृष्ण कुमार द्विवेदी, डी.के. राय, सूर्यप्रसाद श्रीवास्तव, कपिल देव तैलंग तथा एस. जे. शिन्दे। 'अभिनव भारती' अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की पत्रिका है। डॉ. शैलेष जैदी के सम्पादकत्व में इसका 'तुलसीदास' विशेषांक 1975-76 के सत्र में प्रकाशित हुआ। इसमें 226 पृष्ठ हैं। 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' का 'मानसचतुश्शती अंक' 1975 में निकला। सम्पादक थे- श्री मनोहर श्याम जोशी। इसमें कई स्तरीय लेख हैं, जो नवीन तथ्यों को वाणी प्रदान करते हैं।

'तुलसी मानस भारती' का प्रकाशन मानसचतुश्शती वर्ष से हुआ। तुलसी मानस प्रतिष्ठान, म.प्र. भोपाल की इस मासिक पत्रिका के संस्थापक सम्पादक श्री गोरेलाल शुक्ल थे। डॉ. प्रभु दयालु अग्निहोत्री ने भी काफी समय तक इसका सम्पादन किया है। वर्तमान में इसके सम्पादक श्री अम्बाप्रसाद श्रीवास्तव हैं। इसका प्रत्येक अंक तुलसी पर ही केन्द्रित होता है। इसके कई विशेषांक स्थायी महत्त्व के हैं। इस पत्रिका की सबसे बड़ी विशेषता इसका नियमित प्रकाशन है। इसे शीर्षस्थ रचनाकारों का पर्याप्त सहयोग प्राप्त है। इसलिए सामग्री अपनी स्तरीयता में उल्लेखनीय होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महन्त बाबा हाथीराम पजावा रामलीला कमेटी, इलाहाबाद की स्मारिका का प्रकाशन सन् 1980 ई. से प्रारम्भ हुआ। यह स्मारिका प्रतिवर्ष दशहरा के पर्व पर प्रकाशित होती है। इसके प्रधान सम्पादक डॉ. हरिमोहन दास टण्डन हैं। किन्तु सामग्री संकलन, चयन तथा प्रकाशन से लेकर पत्रिका-प्रेषण तक का सारा कार्य अत्यन्त निष्ठापूर्वक डॉ. सुरेशव्रतराय करते हैं। डॉ. राय का सम्पादकीय न केवल पठनीय होता है वरन् चिन्तन के नये आयाम भी प्रस्तुत करता है। इसमें प्रकशित प्रायः सभी लेख उच्चस्तरीय होते हैं। मौलिकता तथा शोधपरकता इनकी उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं । सच तो यह है कि यह स्मारिका क्षेत्र विशेष की नहीं वरन् पूरे देश का प्रतिनिधित्व करती है। स्मारिका के अन्त में आय-व्यय निरीक्षक के द्वारा प्रमाणित आय-व्यय का पूर्ण विवरण दिया रहता है, जिससे लेखा की पारदर्शिता बनी रहती है।

'मानससुमन' मानस प्रचार समिति, सूरज कुण्ड, मेरठ की अर्धवार्षिक पत्रिका है। इसका प्रकाशन सन् 1975 ई. से हो रहा है। श्री बाबू सिंह बाल्यान इसके प्रधान सम्पादक हैं। 'राम रसायनश्री' बिहार के पूर्व चम्पारण के मोतीहारी नामक स्थान से सन् 1988 से निकल रही है। इस त्रैमासिक पत्रिका के सम्पादक प्रो. रामाश्रय प्रसाद सिंह हैं। इस पत्रिका का मुख्य स्वर अध्यात्म है, जिसके केन्द्रबिन्दु तुलसी हैं। इसका सम्पादकीय स्वयं में एक विद्वतापूर्ण लेख होता है, जो सामयिक सन्दर्भों को भी आत्मसात् किए रहता है। 'श्री रामदूत' के सम्पादक श्री कृष्णचन्द्र जोशी अनुज हैं तथा 'संकट मोचन दयानिधान' के सम्पादक डॉ. दयाशंकर सिंह हैं। ये दोनों ही पत्रिकाएँ त्रैमासिक हैं, जो प्रयाग से विगत कई वर्षों से नियमित रुप से निकल रही हैं।

'मानस माधुरी' अखिल भारतवर्षीय श्री रामचरित मानस समिति, नैमिष क्षेत्र, सीतापुर की वार्षिक पत्रिका है, जिसके सम्पादक डॉ. गणेशदत्त सारस्वत हैं। सन् 1990 ई. से इसका प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इसके कुल पाँच अंक ही निकल सके। 132 पृष्ठों के आकार की इस पत्रिका का अपने क्षेत्र में पर्याप्त सम्मान था।

'मानस चन्दन' का प्रथम अंक अक्तूबर 1995 ई. में निकला । तब से रामकथा षिषयक यह त्रैमासिक पत्रिका निरन्तर प्रकाशित हो रही है और वह भी समय से। इसके सम्पादक भी डॉ. गणेशदत्त सारस्वत हैं । यह पत्रिका विदेशों में भी काफ़ी चर्चित है। इसके रचनाकार न केवल भारतवर्ष के वरन् विदेशों के भी शीर्षस्थ विद्वान हैं।

उपर्युक्त विवरण यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं कि तुलसी जन-जन में रचे-बसे हैं। उनका साहित्य, विशेष रूप से रामचरितमानस, प्रत्येक वर्ग के पाठक का कण्ठहार है। इसलिए उन पर केन्द्रित प्रकाशनों की पत्र-पत्रिकाओं की संख्या असीमित है। इस आलेख में उनका यत्किंचित निदर्शन मात्र है। सम्पूर्ण विवरण तो कई ग्रन्थों की अपेक्षा रखता है।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वंशवेलि' उपन्यास : एक अभिनव प्रयोग

समी. : डॉ. राम गोपाल सिंह

द्विसहस्राब्दि वर्ष की शुरूआत में पश्चिमांचल प्रकाशन, अहमदाबाद से गुजरात के वरिष्ठतम साहित्यकार डॉ. गोवर्द्धन शर्मा का उपन्यास 'वंशवेलि' प्रकाशित हुआ है। इस उपन्यास में डॉ. शर्मा जी ने कई अभिनव प्रयोग किए हैं। हिंदी उपन्यास विधा में तिलस्मी, जासूसी, सामाजिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, वैज्ञानिक, जीवनीपरक, आंचलिक आदि प्रयोग बखूबी हुए तथा इन प्रयोगों के माध्यम से हिंदी उपन्यास विधा का क्रमिक विकास भी हुआ है। डॉ. शर्मा जी के उपन्यास 'वंशवेलि' से हिंदी उपन्यास विधा में अभिलेखात्मक उपन्यास की नए ढंग से शुरूआत होती है। अत: निस्संदेह रूप से 'वंशवेलि' उपन्यास को हिंदी का पहला नवीन ढंग का अभिलेखात्मक उपन्यास तथा डॉ. शर्मा जी को हिंदी में अभिलेखात्मक उपन्यास का प्रवर्तक माना जा सकता है।

डॉ. गोवर्द्धन शर्मा गुजरात की भूमि से अपनी साहित्य-गंगा बहाने वाले ओजस्वी, प्रखर, वरिष्ठ, सुप्रसिद्ध एवं शीर्षस्थ साहित्यकार हैं। वे कवि, निबंधकार, समीक्षक, संशोधक, एकांकीकार, कथाकार आदि के रूप में कई दशकों से हिंदी साहित्य को समृद्ध करने के कार्य में सन्नद्ध हैं। वे कच्छ एवं डिंगल साहित्य के विशेषज्ञ एवं प्रयोगधर्मी सर्जक हैं।

डॉ. शर्मा जी ने अपने अभिलेखात्मक उपन्यास 'वंशवेलि' के माध्यम से हिंदी उपन्यास विधा में एक नवीन प्रयोग करके नवीन पथ प्रशस्त किया है। डॉ. शर्मा मूलत: प्रयोगधर्मी सर्जक हैं। उन्होंने 'वंशवेलि' की भूमिका में लिखा है कि 'वंशवेलि' उपन्यास में अनेक प्रकार के नवीन प्रयोग किए गए हैं। यह उपन्यास संशोधन और रचनात्मकता का समन्वय है। इसमें वंशवृद्धि के लिए किए जाने वाले विभिन्न प्रयत्नों-दत्तक विधान, यज्ञ, पूजा-अर्चना, चिकित्सा, बहु विवाह, नियोग, वैज्ञानिक यत्न तथा कृत्रिम गर्भाधान, टेस्ट ट्यूब बेबी, भ्रूण स्थानांतरण, जुड़वा बच्चों की उत्पत्ति एवं पराए बच्चों को चुराकर अपनाने की प्रक्रिया, किराए की कोख जैसे यत्न सभी वैज्ञानिक-अवैधानिक प्रयत्न युगों से होते चले आए हैं। इनकी पृष्ठभूमि राजनीतिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, आनुवंशिक, इतिहास एवं संस्कृति के आलोक में अंकित की गई है। स्वाभाविक है कि इतने वैविध्य और कालावधि को निरूपित करने में शिल्पगत नए प्रयोग भी होंगे।"

'वंशवेलि' उपन्यास की विषयवस्तु का फलक बड़ा ही व्यापक है। यह अपने ढंग का हिंदी का प्रथम अभिलेखात्मक उपन्यास है अत: विषयवस्तु की व्यापकता पर चकित रह जाना स्वाभाविक ही है। इस उपन्यास की कथावस्तु में प्रमुख रूप से निम्नलिखित पहलू शामिल हैं :

1. वंशवृद्धि के लिए किए गए प्रयत्न : वैधानिक, अवैधानिक तथा दत्तक विधान, (2) अनाथालय से गोद लेना, (3) पुत्र प्राप्ति के लिए बलि, (4) जादू-टोने, तंत्र-मंत्र-यज्ञ आदि, (5) शिशु की चोरी, (6) एकाधिक शादियाँ, (7) नियोग, (8) वैद्य-हकीम बने ठगों की चतुराई, (9) किराए की कोख, (10) विज्ञान, इतिहास, समाजशास्त्र, धर्मशास्त्र एवं अर्थशास्त्र के आलोक में जैविक आवश्यकता आदि ।

वैज्ञानिक स्थितियों में (1) कृत्रिम गर्भाधान, (2) टेस्ट ट्यूब बेबी, (3) जुड़वाँ बच्चे, (4) भ्रूण स्थानांतरण, (5) मिथ्या गर्भधारण की स्थिति, (6) गर्भस्थ शिशु का यौन परिवर्तन, (7) गैमीट इंट्राफेलोपियन ट्रांसफर, (8) टेस्टीक्यूलर हाइपोथरमिया डिवाइस आदि को इस उपन्यास के ताने-बाने में बड़े ही मनोहारी रूप से सँजोया गया है। विज्ञान के गम्भीर से गम्भीर पहलू भी सामान्य जन को भी बड़ी ही आसानी से गले-उतर जाते हैं और कथा को हृदयंगम करने में कहीं भी बाधा उपस्थित नहीं करते । वैज्ञानिक स्थितियाँ कथा के विकास में कहीं भी बाधक नहीं बनतीं अपितु जिज्ञासा में अभिवृद्धि ही करती हैं।

'वंशवेलि' उपन्यास के सांस्कृतिक संदर्भ रामायण, महाभारत, लोक कथाएँ, दंत कथाएँ, देवी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागवत आदि से लिए गए हैं तथा पृष्ठभूमि का फलक वेद, लोकविश्वास, बाइबल, कुरान, उपनिषद, स्मृतियां आदि से संबंधित हैं। साहित्यिक संदर्भ रामचरितमानस, कवितावली (तुलसीदास), डॉ. जैकिल एण्ड मि. हाइड (स्टीवेंसन), पउमचरिउ (स्वयंभू), कथासरित्सागर (सोमदेव), अन्नाकेरेनीना (तालस्ताय), स्कंडिनेवियन महाकाव्य-याल्संगा सागा से लिए गए हैं।

'वंशवेलि' उपन्यास की आधारशिला चिकित्साशास्त्र, मनोविज्ञान, अनुवंशीय इंजीनियरिंग, जैव रसायन, नृशास्त्र, एवं सांस्कृतिक इतिहास की नवीनतम शोध पर आधृत है। इस उपन्यास में कुल पाँच अध्यायों में 'वंशवेलि' की कथावस्तु को रखा गया है। इन पाँच अध्यायों- (1) क्यारी, (2) बीज, (3) अंकुर, (4) वेलि, और (5) फूल में अनेक कथाएँ समानांतर रूप से चलती हैं तथा ये सभी कथाएँ समाज एवं व्यक्ति के विभिन्न पहलुओं को बखूबी उजागर करती हैं' क्यारी में 38 पृष्ठ, बीज में 46 पृष्ठ, अंकुर में 52 पृष्ठ, वेलि में 42 पृष्ठ तथा फूल में 1 पृष्ठ, इस तरह कुल 179 पृष्ठों में 'वंशवेलि' का क्यारी का उर्वरतायुक्त वातावरण में तैयार होना, बीजरोपण, अंकुरण, वेलि के रूप में पल्लवन और अंततः पुष्पन करके कथा को बड़े ही सुंदर ढंग से सँजोया गया है। इस उपन्यास में अन्य कई कथाओं के ताने-बाने इस तरह परस्पर गूँथे गए हैं कि आद्यंत आकर्षण बना रहता है तथा तथा के एक सूत्र को दूसरे सूत्र से इस तरह सम्बद्ध किया गया है कि पूरा उपन्यास पढ़ने के बाद ही पाठक के दिमाग की कथा सृजित गुत्थियाँ समवेत रूप से सुलझ पाती हैं और पाठक पूरा उपन्यास एक बैठक में पढ़ने की कोशिश करके शीघ्रातिशीघ्र समाधानों पर पहुँचना चाहता है। घटनाओं के फलक इतने विस्तीर्ण हैं कि उनके माध्यम से संतति को समूची वैश्विक सूचनाएँ बड़े ही आकर्षक ढंग से आ जाती हैं।

'वंशवेलि' अभिलेखात्मक उपन्यास हिंदी की कालजयी कृति है। यह संतति विषयक विश्वकोश है। यह उपन्यास एक साहित्यकार, वैज्ञानिक, समाजशास्त्री, चिकित्सक, मनोविज्ञानी, अनुवंशीय इंजीनियर, जैव रसायनज्ञ, नृशास्त्री, सांस्कृतिक इतिहासकार, वैज्ञानिक स्थितियों के मर्मज्ञ, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संदर्भों के मनीषी, विश्व साहित्य के विशेषज्ञ हिंदी के विद्वान साहित्यकार की चहुमुखी प्रतिभा की सृष्टि है। यह उपन्यास हिंदी साहित्य के लिए मील का पत्थर है । आंचलिक उपन्यास की परंपरा को जिस तरह 'मैला आँचल' ने हिंदी में रोपित किया तथा अब हिंदी में आंचलिक उपन्यासों की सुदीर्घ परम्परा होने के बावजूद भी 'मैला आँचल' आज भी मील का पत्थर है, उसी तरह डॉ. शर्मा जी का अभिलेखात्मक उपन्यास 'वंशवेलि' भी हिंदी में अभिलेखात्मक उपन्यासों की परंपरा का श्रीगणेश करके उसे विकसित करने वाला मील का पत्थर साबित होगा, इसमें कोई संदेह नहीं । लोग नूतन के प्रति कितने ही नाक भौं क्यों न सिकोड़ें, ननुच करें पर नूतन से नवनिर्माण होता है। आँखें बंद करने से सूर्य के आलोक को तिरोहित नहीं किया जा सकता ।

'वंशवेलि' उपन्यास हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि है, ज्ञानागार है तथा कालजयी रचना है। ऐसी कालजयी रचनाएँ सदियों के अंतराल में यदा-कदा ही लिखी जाती हैं क्योंकि ऐसी कृतियों के सर्जक में विभिन्न पचासियों क्षेत्रों की प्रतिभा की अपेक्षा होती है जो डॉ. शर्मा जी में बखूबी है। उनकी यह कृति ज्ञान की विविध विधाओं की विपुल राशि के ज्ञानकोष का लोकभोग्य साहित्यिक सृजन है। अतः 'वंशवेलि' का आकलन व्यापक परिप्रेक्ष्य में करना समय की माँग है। निहित स्वार्थों से ऊपर उठकर स्वागतेय का स्वागत करना भी लाजिमी है। आशा है, साहित्य के मर्मज्ञ, सुधी विद्वान एवं आलोचक इस औपन्यासिक कृति को पूरा पढ़ने-समझने के पश्चात् ही अपनी प्रतिक्रिया देंगे । देश की विभिन्न अकादमियाँ इसका विभिन्न भाषाओं में अनुवाद कराकर प्रकाशित कराने की ओर भी अवश्य ध्यान देगीं ।

चर्चित उपन्यास : 'वंशवेलि', उपन्यासकारः डॉ. गोवर्धन शर्मा, प्रकाशकः पश्चिमांचल प्रकाशन, 26, मनसुखनगर सोसायटी, नवावाडज, अहमदाबाद, प्रथम संस्करणः 2000, मूल्यः 150-00 रु.

•

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निवेदन

परिषद की पत्रिकाओं 'अनुवाद भारती', 'शोध भारती' एवं 'हास्य-व्यंग्य भारती' में प्रकाशनार्थ आपके संबंधित विषय के लेख, कविताएँ, अनूदित रचनाएँ सादर आमंत्रित हैं।

- कृपया अप्रकाशित, स्वरचित और मौलिक रचना ही भेजें।
- रचना कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित / टंकित रूप में हो।
- प्रेषित रचना की प्रति अपने पास अवश्य रखें। केवल स्वीकृत रचना की ही सूचना देना संभव है।
- लेख आदि प्रकाशित करने की एवज में परिषद / पत्रिका मानदेय देने की स्थिति में नहीं है।
- पत्रिकाओं में संबंधित विषय की नई प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा भी प्रकाशित की जाती है। समीक्षा प्रकाशित कराने हेतु प्रकाशित पुस्तक की दो प्रतियाँ भेजनी आवश्यक है।
- परिषद के कार्यालय के पते पर अधिक जानकारी के लिए लिखें।

विशुद्ध साहित्यिक मनोरंजन में आत्मविभोर होने हेतु
नियमित रूप से पढ़ें

अखिल भारतीय हिंदी-भाषा-साहित्य शोध परिषद की

हिंदी हास्य-व्यंग्य विधा की एकमात्र एवं अनूठी
नियमित त्रैमासिक पत्रिका

हास्य-व्यंग्य भारती

सदस्यता शुल्क : वार्षिक रु. 60-00, द्विवार्षिक : रु. 100-00
अधिक जानकारी के लिए लिखें :

डॉ. राम गोपाल सिंह, सम्पादक : हास्य व्यंग्य भारती

अथवा

अध्यक्ष, अखिल भारतीय हिंदी भाषा-साहित्य-शोध परिषद

बी-12, पूर्ण पुरूषोत्तम सोसाइटी, भाग-2,
राणीप, अहमदाबाद-382480. **दूरभाष 7520826**

अखिल भारतीय अनुवाद परिषद, अहमदाबाद की
नियमित त्रैमासिक पत्रिका

अनुवाद भारती

अनुवाद सिद्धांत एवं व्यवहार की अनूठी पत्रिका
अधिक जानकारी के लिए लिखें :

डॉ. राम गोपाल सिंह, सम्पादक : 'अनुवाद भारती' एवं 'शोध भारती'

अथवा अध्यक्ष, अखिल भारतीय अनुवाद परिषद
बी-12, पूर्ण पुरुषोत्तम सोसाइटी, भाग 2,
राणीप, अहमदाबाद-382480. दूरभाष : 7520826

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

 RNI. (T.C.) 400261/98

अखिल भारतीय अनुवाद परिषद

बी-12, पूर्ण पुरुषोत्तम सोसाइटी भाग-2, राणीप, अहमदाबाद- 382480

उद्देश्य : परिषद का उद्देश्य अनुवाद एवं अनूदित साहित्य का प्रचार करना तथा तत्संबंधी अध्ययन, अनुशीलन और प्रकाशन को प्रोत्साहित करना है । अनुवाद के क्षेत्र में कार्यरत अनुवादकों, अनुवाद-विद्यार्थियों, जिज्ञासुओं, विद्वानों, अध्येताओं आदि को उनकी अभिव्यक्ति हेतु एक मंच प्रदान करना है । अनुवाद के क्षेत्र में महत्वपूर्ण और उपयोगी कृतियों की खोज करके उनको सुसंपादित रूप से प्रकाशित करना तथा अनुवाद प्रवृत्तियों को सुचारु रूप से गति देना है।

◆ परिषद की मुखपत्रिका के रूप में 'अनुवाद भारती' एवं 'शोधभारती' नामक त्रैमासिक पत्रिकाओं का प्रकाशन करना । ◆ अनुवाद के अध्ययन, अध्यापन, प्रचार-प्रसार आदि के लिए समुचित अवसर मिलने पर प्रयास करना । ◆ अनुवाद विद्वानों एवं विद्वान अनुवादकों के व्याख्यानों, संगोष्ठियों एवं सम्मेलनों का आयोजन करना तथा अनूदित / लिखित / प्रकाशित श्रेष्ठ कृतियों को पुरस्कार प्रदान करना । अनुवादक सम्मेलनों, सांस्कृतिक कार्यक्रमों और अनुवाद प्रदर्शनियों का आयोजन करना। ◆ विधि, विज्ञान, प्रशासन, पत्रकारिता, तकनीक आदि क्षेत्रों में अनुवाद के माध्यम से साहित्य अभिवृद्धि करना। ◆ अनुवाद विज्ञान की मौलिक कृतियों का प्रकाशन ।

सदस्यता : परिषद का आजीवन सदस्यता शुल्क रु. 1000-00 है । आजीवन सदस्यों को 'अनुवाद भारती' पत्रिका भेजी जाती है । सदस्यता की राशि चेक/ड्राफ्ट/ मनीआर्डर से अखिल भारतीय अनुवाद परिषद के नाम परिषद के पते पर भेजें। परिषद की आजीवन सदस्यता ग्रहण करके अनुवाद के प्रचार-प्रसार एवं उन्नयन में सहयोग कीजिए।

सम्पादक परिचय

नाम : डॉ. राम गोपाल सिंह जादौन

जन्म : 7 मार्च, 1962, अकराबाद, एटा, (उ. प्र.)

शिक्षा : एम.ए., एम.फिल., पीएच.डी., अनुवाद डिप्लोमा, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

हिंदी में भाषाविज्ञान, शैलीविज्ञान, अनुवाद विज्ञान, प्रयोजनमूलक हिंदी, पत्रकारिता, व्याकरण एव साहित्य के विशेषज्ञों में अग्रणी। इन विषयों पर दर्जनाधिक ग्रंथों एवं 200 से भी अधिक शोध लेखों का प्रकाशन।

प्रमुख प्रकाशन :

(1) अखिल भारतीय अनुवाद परिषद की हिंदी भाषा-साहित्य एवं शोध की त्रैमासिक पत्रिका 'शोध भारती', अनुवाद विधा की प्रतिष्ठित त्रैमासिक पत्रिका 'अनुवाद भारती' तथा हिंदी भाषा साहित्य-शोध परिषद की त्रैमासिक पत्रिका 'हास्य-व्यंग्य भारती' का सम्पादन।

(2) काव्य संकलन - 'नदी किनारे'। शताधिक कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित।

(3) बैंकों में प्रयुक्त हिंदी की वाक्य रचना (1986), यू.जी.सी. रिसर्च प्रोजेक्ट शैली विज्ञान की अनुवाद में उपयोगिता (1995), हिंदी वाक्य रचना पर अंग्रेजी का प्रभाव (1997), यू.जी.सी. रिसर्च प्रोजेक्ट आधुनिक हिंदी का शोधपरक व्याकरण' (का.), तुलसी के काव्यादर्श (1998), अनुवाद विज्ञान : स्वरूप और समस्याएँ (1999), हिंदी भाषा पर फारसी और उर्दू का प्रभाव (1999), विश्व की भाषाओं का वर्गीकरण (1999), जनसंचार माध्यम और अनुवाद (1999), कबीर के काव्यादर्श (1999), कबीर के काव्य सिद्धांत (1999) तथा अन्य ।

सम्प्रति : (1) गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद के अनुवाद विज्ञान स्नातकोत्तर विभाग में वरिष्ठ प्रभारी प्राध्यापक, स्थापक अध्यक्ष एवं शोध निर्देशक।

अन्य : अध्यक्ष, अखिल भारतीय अनुवाद परिषद,
अध्यक्ष, अखिल भारतीय हिंदी भाषा साहित्य-शोध परिषद,

अमेरिकन बायोग्राफीकल सोसाइटी द्वारा 'मैन ऑफ द ईयर-1998' तथा अन्य राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित।

सम्पर्कसूत्र : बी-12, पूर्ण पुरुषोत्तम सोसाइटी, भाग-2, राणीप, अहमदाबाद-382 480 (गुज.) दूरभाष : 7520826

Published, Printed and owned by Dr. Ram Gopal Singh, President, Akhil Bharatiya Anuvad Parishad, B-12, Purna Purushottam Society, Part-2, Ranip, Ahmedabad-382480 (India) Editor : Dr. Ram Gopal Singh

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोध भारती

[हिंदी भाषा-साहित्य और शोध की त्रैमासिक पत्रिका]

संयुक्तांक : 10-11 अक्तूबर - मार्च, 2001

सम्पादक :

डॉ. राम गोपाल सिंह

अखिल भारतीय अनुवाद परिषद, अहमदाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोध भारती

अक्तूबर - मार्च, 2001

संपादक : डॉ. राम गोपाल सिंह

सहयोग राशि (नकद, मनीऑर्डर, ड्राफ्ट से भेजें)

वार्षिक : 100-00 त्रिवार्षिक : 300-00

द्विवार्षिक : 200-00 चतुर्वार्षिक : 400-00

पंचवार्षिक : 500-00

अध्यक्ष, अखिल भारतीय अनुवाद परिषद

बी-12, पूर्ण पुरुषोत्तम सोसाइटी, भाग-2, राणीप, अहमदाबाद-382480

दूरभाष : (079) 7520826

अनुक्रम / Contents

1. सम्पादकीय ... कम्प्यूटर में हिंदी		1-4
2. हिंदी और गुजराती के संख्यावाचक शब्दों का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. राम गोपाल सिंह	5-18
3. 'ऐ लड़की' : एक चिंतन यात्रा	डॉ. मधु संधु	19-22
4. हिंदी कहानी में साम्प्रदायिक तनाव और नारी मन:स्थिति	शैली जग्गी	23-28
5. चलती का नाम गाड़ी	डॉ. राम गोपाल सिंह	29-33
6. कहानी - अचला	अशोक वर्मा 'साजन'	34-35
7. साहित्य और उत्तर संस्कृति	डॉ. अमर सिंह वधान	36-48

●●●

लेखक परिचय

● **डॉ. राम गोपाल सिंह,** वरिष्ठ प्राध्यापक, शोध निर्देशक एवं स्थापक अध्यक्ष, अनुवाद विज्ञान विभाग, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद ● **डॉ. मधु संधु,** रीडर, हिंदी विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर ● **श्री शैली जग्गी,** 905-ए, हाउसिंग बोर्ड कालोनी, रंजीत अवेन्यू, अमृतसर ● **डॉ अमर सिंह वधान,** 60, गीता अपार्टमेंट्स, गीता कालोनी, दिल्ली ● **श्री अशोक वर्मा 'साजन',** ए-17, सारथि बंग्लोज, उमा शिक्षण तीर्थ के पास, नरोडा, अहमदाबाद/

पत्रिका में प्रकाशित विचारों से परिषद/प्रकाशक/सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। सभी विवादों का न्यायक्षेत्र अहमदाबाद ही होगा। किसी पात्र या घटना के साथ किसी की समानता होना मात्र संयोग ही होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय......

कंप्यूटर में हिंदी

आधुनिक जीवन में कंप्यूटर जीवन के अभिन्न अंग के रूप में जगह लेता जा रहा है. कंप्यूटर आज धीरे-धीरे सब जगह पहुँच रहा है और हमारे जीवन का अभिन्न हिस्सा बनता जा रहा है । सार्वजनिक और निजी दोनों ही क्षेत्रों में कंप्यूटर का उपयोग किया जा रहा है । इस तरह, कंप्यूटर क्रांति का श्रीगणेश हो चुका है । अतः इससे परिचित होना समय की माँग भी है और आवश्यकता भी । हमारी जीवन प्रणाली, हमारा कार्य करने का ढंग, हमारी दुनिया निरंतर बदल रही है और इस बदलाव को नजरंदाज नहीं किया जा सकता। बहुतों के लिए कंप्यूटर आज भी किसी करिश्मे से कम नहीं है ।

कंप्यूटर का विकास वैसे तो प्रमुख रूप से अंग्रेजी माध्यम से हुआ है, इसलिए इसकी कार्यप्रणाली को समझने में बहुतों को आज भी काफी कठिनाई होती है । कंप्यूटर के संदर्भ में भाषा का सवाल बहुत महत्व नहीं रखता, क्योंकि कंप्यूटर के लिए विश्व की सारी भाषाएँ समान महत्व की हैं । कंप्यूटर की अपनी एक स्वतंत्र मशीनी भाषा होती है जिसे कंप्यूटर की भाषा कहा जाता है ।

'कंप्यूटर में हिंदी' के संदर्भ में कंप्यूटर के भाषागत पक्ष को समझना भी जरूरी है। कंप्यूटर में किसी भाषा के वर्णमाला के अक्षरों का उपयोग नहीं होता। कंप्यूटर की अपनी स्वतंत्र मशीनी भाषा होती है । वर्तमान सदी के सातवें दशक में कंप्यूटर में एक अन्य शोध को भी जोड़ा गया है जिसे कम्पाइल या संग्राहक कहा गया है । यह कंप्यूटर के भीतर एक ऐसी व्यवस्था है जिससे भाषायी सूचनाओं को मशीनी भाषा में परिवर्तित करना संभव हुआ है । 1954 में अमेरिका की कंपनी 'इंटरनेशनल बिजनेस मशीन' ने फारट्रान नामक भाषा तैयार की । इस भाषा के जरिए गणितीय सूत्रों को मशीनी भाषा में बदलना संभव हो सका । 'अलगोल' भाषा भी इसी प्रयास की अगली कड़ी है । 1959 में 'कोबोल' भाषा का निर्माण किया गया । इस भाषा में प्रयुक्त अधिकांश शब्दों का मनुष्य समाज की सामान्य भाषा में ठोस अर्थ होता है । सातवें दशक में अमेरिका में एक भाषा 'बेसिक' का निर्माण हुआ । 'बेसिक' के अपने विशिष्ट अक्षर, शब्द तथा संकेत हैं । यह भाषा बहुत उपयोगी है ।

सिद्धांत रूप से देखा जाए तो कंप्यूटर हमारी भाषाओं, लिपियों और दशमलव पद्धति पर आधारित संख्याओं को इनके ज्यों के त्यों रूप में नहीं समझ पाता । इलेक्ट्रानिक कंप्यूटर की केंद्रीय संसाधक इकाई अर्थात् सी.पी.यू. में कोई गतिशील पुर्जा तो होता नहीं बल्कि उसमें विद्युत के आवेश या पल्संज दौड़ते रहते हैं । इन गतिशील आवेशों की दो स्थितियाँ रहती हैं - चालू और बंद यानी ऑन और ऑफ जिनके लिए दो अंक संकेत हैं - 0 और 1 और इन्हीं अंक संकेतों से सारे काम होते हैं । चूँकि कंप्यूटर केवल दो ही स्थितियों को समझ पाता है इसलिए हमारी भाषा या संख्याओं को सबसे पहले इन्हीं दो संकेतों या योजनाओं में बदलना होता है । मजे की बात तो यह है कि दशाधारी संख्याओं को द्विआधारी या बाइनरी संख्याओं में बदला जा सकता है । तार्किक कथनों को दो संकेतों के बीजगणित में आसानी से बदला जा सकता है ।

इस द्विआधारी अंक पद्धति में केवल दो अंक होते हैं - 0 और 1। इस अंक पद्धति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में स्थानीय मान या प्लेस वेल्यू दायीं ओर से बायीं ओर क्रमशः दो गुना बढ़ता चला जाता है । जिस तरह संख्याओं को द्विआधारी अंक पद्धति में बदला जाता है, उसी तरह अक्षरों को भी बदला जाता है । मोर्स संकेत पद्धति में बिंदु और डेश की योजना से सारे रोमन अक्षर व्यक्त किए जा सकते हैं । उसी प्रकार द्विआधारी अंक पद्धति से 0 से 25 तक की संख्याओं से 26 रोमन अक्षरों को व्यक्त किया जा सकता है ।

देवनागरी लिपि की स्थिति रोमन लिपि से काफी अलग है । देवनागरी में आधे अक्षर और मात्राओं का प्रयोग होता है । इसीलिए कुंजीफलक या की-बोर्ड बड़ा बनाना पड़ता है । अंग्रेजी भाषा के कुंजीफलक या की-बोर्ड के लिए सात 'बिट' पर्याप्त होते हैं । इन सात बिटों से 128 संकेत अक्षर, अंक आदि के लिए व्यक्त किए जा सकते हैं । यदि एक बिट और बढ़ा दिया जाए तो आठ बिट हो जाएँगे । इन आठ बिटों से एक 'बाइट' बनेगा जिससे 256 संकेत व्यक्त किए जा सकते हैं अर्थात् एक बिट बढ़ा देने से जो 128 अतिरिक्त संकेत बढ़े उनसे भारत की किसी भी लिपि को व्यक्त किया जा सकता हैं । कहने का अर्थ यह है कि 'बाइट' अर्थात् आठ बिट की संकेत प्रणाली से द्विभाषी कंप्यूटर बन सकता है ।

देवनागरी लिपि एक पूर्णतः वैज्ञानिक लिपि है । इस लिपि में कंप्यूटर से काम करना कठिन नहीं है । वैज्ञानिकों ने देवनागरी में कंप्यूटर के विकास में सफलता पहले ही प्राप्त कर ली है । अब पूर्णतः देवनागरी कंप्यूटर आ चुका है । इस देवनागरी कंप्यूटर ने हिंदी में मुद्रण, प्रकाशन, संप्रेषण और भारतीय भाषाओं में मशीन संचालन की सभी गुत्थियों को पूरी तरह से सुलझा दिया है ।

वैसे तो देवनागरी के कंप्यूटर विकसित करने के प्रयास 1965 के आसपास से ही चल रहे थे। इन प्रयासों को 1970 के बाद सफलता मिलनी शुरु हो गई थी । देवनागरी में कंप्यूटर के विकास में आई.आई.टी., कानपुर के प्रयास विशेष उल्लेखनीय हैं । 1971-72 में आई.आई.टी. कानपुर ने एक बहुत सरल कुंजीफलक और उसकी प्रणाली तैयार की जिसे सभी भारतीय भाषाओं के लिए इस्तेमाल किया जा सकता था । सभी भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त हो सकने वाला यह 'प्रोटोटाइप टर्मिनल' 1978 में तैयार किया गया । आई.आई.टी. कानपुर ने ही पूर्णीकृत देवनागरी कंप्यूटर का विकास केवल छह महीनों में किया जो एक रिकॉर्ड है । इस कंप्यूटर का विकास आई.आई.टी. कानपुर के कंप्यूटर वैज्ञानिक डॉ. आर.एम. के. सिन्हा, उनके सहयोगी अनुसंधान इंजीनियर मोहन लम्बे, प्रोफेसर एस.के.मलिक तथा अन्य के सहयोग,कठिन परिश्रम और लगन से हुआ । इस देवनागरी हिंदी कंप्यूटर को नई दिल्ली में आयोजित तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर भी प्रस्तुत किया गया।

भारत में 'सिद्धार्थ' नामक पहला द्विभाषी कंप्यूटर बना । यह अंग्रेजी और हिंदी दो भाषाओं में काम कर सकता है । इसमें हिंदी के स्थान पर तमिल का भी उपयोग किया जा सकता है । इस कंप्यूटर का निर्माण टेक्नोलोजी संस्थान, पिलानी और डी.सी.एम. ने मिलकर किया लेकिन आई.आई.टी. कानपुर द्वारा विकसित अंग्रेजी - हिंदी कंप्यूटर अधिक विकसित है । इसमें अंग्रेजी के सात बिट मानक संकेत प्रणाली को 8 बिट प्रणाली में विस्तृत करके देवनागरी के लिए स्थान बनाया गया है ।

चूँकि भारत बहुभाषाभाषी देश है । अतः भारत के संदर्भ में त्रैभाषिक कंप्यूटर की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यकता भी महसूस की गई । इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए एक सबसे अधिक विकसित कंप्यूटर तैयार किया गया । इस कंप्यूटर का नाम 'लिपि' है । इस कंप्यूटर में अंग्रेजी के अतिरिक्त हिंदी, तमिल, मराठी, तेलगू, कन्नड, मलयालम आदि में से किन्हीं दो भाषाओं की व्यवस्था संभव है । इस कंप्यूटर में एक मानक शब्द संसाधक स्टेंडर्ड (वर्ड प्रोसेसर) के भी साधन हैं, जैसे इंटेल का 8088 का चिप, 256 के.बी. स्मृति आंतरिक शब्दं कोश, वर्तनी ठीक करने की व्यवस्था, भारतीय भाषाओं के शब्दों के साथ ही अंग्रेजी शब्दों को रखने की व्यवस्था, लिप्यंतरण की व्यवस्था आदि । 'लिपि' कंप्यूटर के 12 इंच वाले दृश्यपटल या स्क्रीन पर 40 अक्षर प्रति पंक्ति वाली 12 पंक्तियाँ दर्शायी जा सकती हैं ।

'शब्दमाला' नामक अंग्रेजी - हिंदी शब्द संसाधक (वर्ड प्रोसेसर) भी तैयार किया गया है । इसका 114 संकेतों का कुंजीफलक रेमिंगटन के हिंदी कुंजीफलक के अनुरुप है । बम्बई के 'हिंदीट्रान' की ओर से 'आलेख' नामक शब्द संसाधक भी बनाया गया है । इस शब्द संसाधक में अनेक सुविधाएँ हैं । अंग्रेजी के अतिरिक्त हिंदी और मराठी में इस पर काम करना संभव है ।

देवनागरी कंप्यूटर का मुख्य उपयोग मूल पाठ तैयार करने में है । मूल पाठ तैयार करने का अर्थ बहुत विस्तृत है । इसमें एक अक्षर टाइप करने से लेकर एक पूरी पत्रिका, पुस्तक या समाचार पत्र को तैयार करना तक शामिल है । इन सभी कामों के लिए आवश्यक व्यवस्था कंप्यूटर में रहती है । अतः कंप्यूटर के संदर्भ में पाठ का अर्थ किसी भी प्रिंटिंग प्रेस या मुद्रणालय में मिलने वाली सुविधाओं जितना है।

कंप्यूटर से मूल पाठ तैयार करने के लिए सबसे पहले कागज के आकार का चुनाव किया जाता है । हालाँकि पर्दे पर एक समय में अधिक से अधिक १२ या १३ पंक्तियाँ आ सकती हैं । लेकिन कागज के आकार की कोई सीमा नहीं है । कंप्यूटर का स्क्रीन एक खिड़की का काम करता है । जिसमें एक बड़े आकार का कागज भी देखा जा सकता है। कागज को घुमाने के लिए चार दिशा निर्देशक कुंजियाँ होती हैं जिससे उसे आगे - पीछे, दाए-बाए किया जा सकता है । इस संबंध में प्रश्न उठता है कि क्या कागज को एक ही बार में पूरा का पूरा देखा जा सकता है । उत्तर होगा-हाँ,क्योंकि इसके लिए सारे कागज को दिखा देने की व्यवस्था है जिसे 'जूम' कहा जाता है । इसमें कागज को घटाकर या बढ़ाकर स्क्रीन के आकार का करके प्रस्तुत किया जा सकता है और इस तरह से कंप्यूटर में हम पूर्ण रिपोर्ट या पत्रिका या पुस्तक या अखबार की उसी तरह जाँच कर सकते हैं जैसे सामान्यतः जाँच करने के लिए पृष्ठों को उलटते-पलटते हैं ।

कंप्यूटर में मूल पाठ को स्क्रीन पर नियत स्थान पर अंकित करने के लिए कार्यप्रणाली बड़ी सरल है जिसके कारण कंप्यूटर में हिंदी के प्रयोग में बड़ी सरलता रहती है । इसके लिए एक सरकने वाला संकेतक या प्रकाश का बॉक्स या तीर होता है जो सदैव यह संकेत करता है कि पाठ किस स्थान पर अंकित होगा । दिशानिर्देशक कुंजियों के द्वारा इस संकेतक, जिसे 'कर्सर' कहते हैं, को मूलपाठ के किसी भी स्थान पर पहुँचाया जा सकता है । इससे और भी कई काम लिए जाते हैं । यदि टंकित किए गए मूल पाठ के किसी हिस्सों में कोई अक्षर या शब्द गलत हो तो संकेतक को इस स्थान पर ले जाकर गलत शब्द के ऊपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सही शब्द टाइप कर दिया जाता है । किसी भी पैराग्राफ या पंक्ति में से अक्षर या शब्द को निकाला जा सकता है; अक्षर, शब्द, पूरा वाक्य या वाक्यांश जोड़ा जा सकता है । किसी शब्द को जोड़ने या घटाने या मूल पाठ को आगे-पीछे करके स्थान बनाने या यदि शब्द को निकाला गया है तो स्थान घटाने की जरूरत होती है । कंप्यूटर से काम करने में सबसे बड़ी सुविधा यह है कि संयोजन कंप्यूटर अपने आप करता चला जाता है । जोड़ने या निकालने का काम मात्र अक्षरों या शब्दों तक ही सीमित नहीं है; पूरे वाक्य या पैराग्राफ को भी जोड़ा या घटाया जा सकता है । इस तरह से मूलपाठ से खिलवाड़ करते हुए उसे मनचाहा रूप दिया जा सकता है ।

देवनागरी कंप्यूटर पर काम करने में तथा मूलपाठ तैयार करने में सारी प्रक्रिया में कागज की जरूरत नहीं पड़ती । सब कुछ कंप्यूटर की स्मृति या मेमोरी में रहता है और उसे स्क्रीन पर देखा जा सकता है । इस तरह से तैयार की गई प्रति को मूल पाठ की कोमल प्रति या सॉफ्ट कॉपी कहा जाता है । यदि सॉफ्ट कापी से पूरी संतुष्टि मिले तो उससे हार्ड कापी या कठोर प्रति तैयार की जा सकती है । यह प्रतिबिंदुओं वाले साँचे डॉट-मैट्रिक्स पर बनती और मुद्रित होती है । यह मुद्रण बिल्कुल वैसा ही होता है जैसे अक्षर स्क्रीन पर दिखाई देते हैं बल्कि उससे भी साफ और सुंदर मुद्रण होता है । इस पूरी प्रक्रिया में कितनी आसानी होती है । न तो कागज-कलम का झंझट न, काट-पीट, न कागज की बर्बादी और न किसी चरण में दोहरी -तिहरी कोशिश ही करनी पड़ती है । समय की बचत तो होती ही है ।

देवनागरी कंप्यूटर अथवा शब्द संसाधक से विभिन्न प्रकार के फर्मे तैयार किए जा सकते हैं और जब आवश्यकता पड़े, उन्हें निकाला जा सकता है । और तो और, फर्मों या पत्र-पत्रिकाओं को तैयार करके रखा भी जा सकता है और यदि उनमें परिवर्तन करने की इच्छा हो या पहले के पाठ को बर्बाद किए बिना या दुबारा बनाने का झंझट किए बिना ही परिवर्तन बड़ी आसनी से किया जा सकता है । इतना हीं क्यों, यदि उत्तम किस्म का आलेख प्राप्त करना हो तो कंप्यूटर को किसी फोटो कंपोजिंग या टाइप सेटिंग मशीन से जोड़ा जा सकता है ।

देवनागरी कंप्यूटर पर काम करने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि कंप्यूटर पर दिखाई गई प्रणालियों में से एक आइटम का चुनाव कर लिया जाए । कंप्यूटर पर दिखाई गई इन प्रणालियों को 'मीनू' कहा जाता है । पूर्णीकृत देवनागरी कंप्यूटर में कई सारे मीनू देने के कारण कंप्यूटर में एक और सुविधा हो गई है । यह सुविधा टाइपों के चयन तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसमें स्मृति का भी समावेश रहता है । कंप्यूटर याद रखता है कि पिछली बार आपने कौन सा चुनाव किया था और यदि आपको आवश्यकता पड़े तो आप स्वयं कंप्यूटर से ही चुनाव करने के लिए कह सकते हैं । इसके लिए आपको केवल 'सहायता' या 'हेल्प' का बटन दबाना पड़ेगा । पूर्णीकृत देवनागरी कंप्यूटर अन्य कंप्यूटरों जैसा ही है । अतः इसके कुंजीफलक से अंग्रेजी का काम भी बिना किसी परिवर्तन के किया जा सकता है । आज कंप्यूटर में हिंदी का प्रयोग पर्याप्त रूप से हो रहा है ।

-डॉ. राम गोपाल सिंह

●●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी और गुजराती के संख्यावाचक शब्दों का तुलनात्मक अध्ययन

-डॉ. राम गोपाल सिंह

हिंदी और गुजराती दोनों भाषाएँ एक ही भाषा परिवार भारोपीय परिवार की हैं । भारोपीय परिवार के सतम् वर्ग की भारत ईरानी शाखा से संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश के क्रम में इन दोनों भाषाओं का एक हजार ई. के आसपास उद्‌गम हुआ है । विभिन्न आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं; यथा: गुजराती, राजस्थानी, पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, बंगला, असमिया, उड़िया, भोजपुरी, मगधी, मैथिली, मराठी, कोंकणी, नेपाली, मध्य पहाड़ी, पश्चिमी पहाड़ी, सिंधी, पंजाबी आदि का मूलस्रोत संस्कृत है, लेकिन विकास के क्रम में इन सभी आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की उत्पत्ति एक ही अपभ्रंश भाषा से हुई है या विभिन्न अपभ्रंश भाषाओं से-इन संबंध में भाषावैज्ञानिकों में परस्पर मतभेद हैं । डॉ. भोलानाथ तिवारी ने अपभ्रंश भाषाओं में शौरसेनी, पैशाची, ब्राचड़, खस, महाराष्ट्री, अर्धमागधी और मागधी का अस्तित्व स्वीकार किया है तथा शौरसेनी अपभ्रंश से हिंदी और गुजराती दोनों भाषाओं की उत्पत्ति मानी है । गुजराती भाषा का विकास शौरसेनी अपभ्रंश के नागर रूप के पश्चिमी रूप से हुआ है तथा इसकी लिपि पुरानी नागरी से विकसित हुई है । शौरसेनी अपभ्रंश से ही पश्चिमी हिंदी का विकास हुआ है । पश्चिमी हिंदी में कन्नौजी, बाँगरू, बुंदेली, खड़ी बोली और ब्रज ये पाँच बोलियाँ आती हैं । खड़ी बोली ही साहित्यिक रूप में हिंदी के नाम से प्रसिद्ध है । यह भारत की राजभाषा हे । दूसरी ओर पं. के. का. शास्त्री, डॉ. भायाणी आदि का मानना है कि आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ एक ही अपभ्रंश से उत्पन्न हुई हैं ।

हिंदी और गुजराती भाषाओं की लिपि का मूल उत्स एक ही है । इस दृष्टि से ब्राह्मी लिपि के प्राचीनतम नमूने चौथी सदी ई. पू. के मिले हैं । पाँचवी सदी ई. पू. से लेकर ३५० ई. तक भारत में प्राप्त ब्राह्मी लिपि थोड़े बहुत भेद तथा विभिन्नताओं के होते हुए भी ब्राह्मी नाम से पुकारी जाती थी । ३५० ई. के बाद इसकी स्पष्ट रूप से दो शैलियाँ हो गई । उत्तरी शैली का प्रचार उत्तर भारत में था तो दक्षिणी शैली का प्रचार दक्षिण भारत में । इन्हीं दोनों शैलियों से भारत की विभिन्न लिपियों का विकास हुआ । उत्तरी भारत की लिपियों में गुप्त लिपि गुप्त राजाओं के समय अर्थात् चौथी-पाँचवीं सदी में प्रचलित थी । गुप्त लिपि से कुटिल लिपि का विकास हुआ । इस लिपि का काल छठी-सातवीं सदी है । नागरी तथा शारदा लिपियाँ कुटिल लिपि से निकली हैं । कुटिल लिपि से नौवीं सदी के लगभग नागरी के प्राचीन रूप का विकास हुआ, जिसे प्राचीन नागरी कहा जाता है । प्राचीन नागरी का क्षेत्र उत्तरी भारत है, किंतु दक्षिण भारत के कुछ भागों में भी यह प्राप्त हुई है । दक्षिण भारत में इसका नाम नागरी न होकर नंदिनागरी है । आधुनिक काल की नागरी या देवनागरी, गुजराती, महाराष्ट्री आदि लिपियाँ इस प्राचीन नागरी के पश्चिमी रूप से ही विकसित हुई हैं । इसके पूर्वी रूप से मैथिली, बंगला आदि लिपियों का विकास हुआ है । पूरे हिंदी प्रदेश की लिपि देवनागरी लिपि है । मराठी भाषा में भी कुछ परिवर्तन – परिवर्धन के साथ यह प्रयुक्त होती है । नेपाली, संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश लेखन में नागरी लिपि का प्रयोग होता है । गुजराती लिपि भी पुरानी नागरी लिपि से ही निकली है तथा हिंदी के लिए प्रयुक्त नागरी लिपि की बहन है ।

हिंदी और गुजराती भाषा में नागरी अंकों का प्रयोग होता है । नागरी अंक ब्राह्मी के अंकों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से विकसित हैं । इन अंकों की दो शैलियों के प्रयोग मिलते हैं । प्राचीन शैली का प्रचार अशोक के समय से लेकर चौथी सदी तक था । इस प्राचीन शैली के अंक अपनी आकृति में तो नवीन शैली से भिन्न थे ही; साथ ही, एक मुख्य और महत्वपूर्ण अंतर था कि वह लोगों को शून्य का पता नहीं था, अतः उसका व्यवहार नहीं होता था । इसका परिणाम यह था कि १ से ९ तक की संख्याओं की तरह ही १०, २०, ३०, ४०, ५०, ६०, ७०, ८०, ९०, १०० आदि के लिए अलग अलग चिह्न थे, अर्थात् १, २, ३ आदि के साथ शून्य रखकर ये संख्याएँ नहीं लिखी जाती थीं । नवीन शैली का प्रयोग पाँचवीं सदी से होने की संभावना है, यद्यपि शिलालेखों आदि में प्राचीन शैली का प्रयोग इसके बाद भी चलता रहा। शून्य भारतीय गणितज्ञों की अभूतपूर्व खोज थी, जो चौथी-पाँचवीं सदी में हुई मानी जा सकती है । रोमन लिपि में अंकों के लिए I, II, III, IV, V, VI, VII, VIII, IX, X आदि का प्रयोग प्रचलित था तथा पुराने रूप में आज भी है । पूरे विश्व को शून्य की संकल्पना देने का श्रेय भारत को है । शून्य की खोज से गणितीय ज्ञान में क्रांति आई । भारत से अंकों की इस नवीन शैली का प्रयोग अरबों ने सीखा और फिर उनसे यूनान ने और फिर यूनानियों से पूरे यूरोप ने सीखा । अतः प्राचीन शैली में १०, २०, ३० आदि के लिए जो अलग चिह्न थे, नवीन शैली में उन्हें छोड़कर उनके स्थान पर शून्य की सहायता से संख्याएँ लिखी जाने लगीं ।

इधर भारत में स्वतंत्रता मिलने के उपरांत मानक हिंदी वर्णमाला के साथ-साथ मानक हिंदी अंकों की बात की जाने लगी । संविधान के अनुच्छेद ३५३ (१) के अनुसार संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होने वाले अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप मान्य होगा परंतु राष्ट्रपति संघ के किसी भी प्रयोजन के लिए भारतीय अंको के अंतराष्ट्रीय रूप के साथ-साथ देवनागरी रूप का प्रयोग भी प्राधिकृत कर सकते हैं । भारतीय संघ तथा कुछ राज्यों की राजभाषा स्वीकृत होने के परिणामस्वरूप हिंदी का मानक रूप निर्धारित करना बहुत आवश्यक हो गया ताकि वर्णमाला एवं अंकों के प्रयोग में सर्वत्र एकरूपता रहे और टाइपराइटर आदि आधुनिक यंत्रों के उपयोग में लिपि की अनेकरूपता बाधक न हो । इन सभी बातों को ध्यान में रखकर केन्द्रीय हिंदी निदेशालय ने शीर्षस्थ विद्वानों आदि के साथ वर्षों विचारविमर्श करने के पश्चात् हिंदी वर्णमाला तथा अंकों का मानक रूप निर्धारित किया । देवनागरी अंकों १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ० की जगह भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 0 पर संविधान के अनुच्छेद ३४३ (१) के अनुसार मानकता की मुहर लगा दी गई ।

हिंदी के संख्यावाचक शब्दों की एकरूपता

हिंदी प्रदेशों में संख्यावाचक शब्दों के उच्चारण और लेखन में प्रायः एकरूपता का अभाव दिखाई देता है । शिक्षा मंत्रालय द्वारा प्रकाशित 'ए बेसिक ग्रामर ऑफ मॉडर्न हिंदी' में भी इस एकरूपता का अभाव था । अतः केन्द्रीय हिंदी निदेशालय में ५-६ फरवरी, १९८० को आयोजित भाषावैज्ञानिकों की बैठक में इस पर गंभीरता से विचार किया गया । तदनुसार हिंदी के एक से सौ तक के सभी संख्यावाचक शब्दों पर विचार करने के बाद इनका मानकरूप निम्नानुसार निर्धारित किया गया :

एक दो तीन चार पाँच छह सात आठ नौ दस

ग्यारह बारह तेरह चौदह पंद्रह सोलह सत्रह अठारह उन्नीस बीस

इक्कीस बाईस तेईस चौबीस पच्चीस छब्बीस सत्ताईस अट्ठाईस उनतीस तीस

इकतीस बत्तीस तैंतीस चौंतीस पैंतीस छत्तीस सैंतीस अड़तीस उनतालीस चालीस

इकतालीस बयालीस तैंतालीस चबालीस पैंतालीस छियालीस सैंतालीस अड़तालीस उनचास-पचास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इक्यावन बावन तिरपन चौंवन पचपन छप्पन सत्तावन अठावन उनसठ साठ
इकसठ बासठ तिरसठ चौंसठ पैंसठ छियासठ सड़सठ अड़सठ उनहत्तर सत्तर
इकहत्तर बहत्तर तिहत्तर चौहत्तर पचहत्तर छिहत्तर सतहत्तर अठहत्तह उनासी अस्सी
इक्यासी बयासी तिरासी चौरासी पचासी छियासी सतासी अठासी नवासी नब्बे
इक्यानवे बानवे तिरानवे चौरानवे पचानवे छियानवे सतानवे अठानवे निन्यानवे सौ

गुजराती के एक से सौ तक के सभी संख्यावाचक शब्द निम्नानुसार हैं :

एक बे त्रण चार पांच छ सात आठ नव दस
अगियार बार तेर चौद पंदर सोल सत्तर अढार ओगणीस वीस
अेकवीस बावीस त्रेवीस चोवीस पचीस छव्वीस सत्तावीस अठावीस ओगणत्रीस त्रीस
अेकत्रीस बत्रीस तेत्रीस चोत्रीस पांत्रीस छत्रीस साड़त्रीस आड़त्रीस ओगणचालीस चालीस
अेकतालीस बेतालीस तेतालीस चुंमालीस पीस्तालीस छतालीस सुड़तालीस अड़तालीस ओगणपचास पचास
अेकावन बावन त्रेपन चोपन पंचावन छप्पन सत्तावन अठावन ओगणसाठ साठ
अेकसठ बासठ त्रेसठ चोसठ पांसठ छासठ सड़सठ अड़सठ ओगणसित्तर सित्तेर
इकोतेर बहोतेर तोतेर चुंमोतेर पंचोतेर छोंतेर सित्तोतेर अठोतेर ओगणएंसी एंसी
इकासी ब्यासी त्यासी चोरासी पंचासी छयासी सत्तासी अठासी नवासी नेवुं
एकाणुं बाणुं ताणुं चोराणुं पंचाणुं छन्नुं सत्ताणुं अठाणुं नवाणुं सो ।

हिंदी और गुजराती के संख्यावाचक शब्दों का तुलनात्मक अध्ययन निम्नानुसार प्रस्तुत है:

हिंदी - एक तथा गुजराती - एक : हिंदी तथा गुजराती दोनों भाषाओं में एक संख्यावाचक शब्द समान है । इसका विकास सं. एक > पा. एक > प्रा. एक्क > अप. एक्क > हिंदी एक; मध्य गु. एक > अर्वा. गुज. एक है ।

हिंदी में यह संयुक्त संख्याओं तथा समासों में इक - (इकतीस, इकतालीस, इकसठ, इकहत्तर, इकतरफा, इकहरा, इकला, इकबारगी), इक्क - (इक्कीस), इक्या - (इक्यावन, इक्यासी, इक्यानवे), ग्या - (ग्यारह) तथा गुजराती में एक - (एकवीस-श, एकत्रीस - श, एकतालीस - श, एकसठ, एकवडु. एकगणुं, एकला), एका - (एकावन, एकाणुं), एक्या (एक्यासी), अग्या- (अगियार, अग्यार), एको- (एकोतेर) आदि रूपों में प्राप्त होता है ।

हिंदी - दो तथा गुजराती - बे : सं. द्वो > पा. दु, दुवे > प्रा. बे, दो > अप. बे, दोण्णि > (१) हिं. दो;मध्य गुज. बे > अर्वा. गुज. बे ।

इस तरह से हिं. दो संस्कृत द्वौ > प्रा. दो से आया है । द्व में व निर्बल है, अतः व का लोप हो गया है । पालि में इसके द्व, द्वे तथा प्रा., अप. में बे, वे, बोण्णि, बिण्ण, दोण्णि आदि रूप मिलते हैं । गुजराती में बे इसी से आया है । हिंदी में अन्य संख्याओं के साथ संयुक्त होने पर ब - (बत्रीस, बहत्तर), बा-(बारह, बाईस, बावन, बासठ, बानवे), ब्या- (ब्यालीस, ब्यासी), आदि रूपों में परिवर्तित हो जाता है । इसके अतिरिक्त समासों में दो- (दोपहर, दोनों, दोहरा), दू- (दूना, दूसरा, दूजा) दु- (दुगना, दुधारी, दुपहर, दुपट्टा, दुहाई, दुभाषिया, दुविधा, दुतरफा, दुबारा) रूप भी बनते हैं ।

गुजराती में यह ब - (बत्रीस, बपोर, बमणुं) बा- (बार, बावीस, बावन, बासठ, बाणुं), ब्या- (ब्यासी), बे- (बेतालीस, बेगणुं, बेवड़ुं, बेरतफनुं) आदि रूपों में देखने को मिलता है।

हिंदी - तीन तथा गुजराती - त्रण : हिंदी तीन तथा गुजराती त्रण का विकास संस्कृत त्रीणि से हुआ है । यथा सं. त्रीणि > पा॰ तिण्णि > प्रा. तिण्णि > अप. तिण्णि, तिन्नि, तीन > (१) हिंदी तीन (२) मध्य गुज. त्रिणि > अर्वा. गुज. त्रण तण त्राय - तराय ।

हिंदी में अन्य संख्यावाचक शब्दों से तथा समासपदों से तीन का प्रयोग ते- (तेरह, तेईस,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेहरा), तें या तैं - (तैंतीस, तैंतालीस), ति, ती (तिसरा, तीज, तीनों), तिर - (तिरपन, तिरसठ), तिरा - (तिरासी, तिरानवे), त्रे - (त्रेपन, त्रेसठ) रूपों में तथा गुजराती में ते (तेर, तेत्रीस), ते या त्रे - (ते-त्रेवीस, त्रेवडुं, त्रेमासिक, तेतालीस, त्रेपन, त्रेसठ), तो (तोतेर), त्र्या (त्र्यासी), ता - त्रा - (ताणुं) रूपों में देखने को मिलता है ।

हिंदी - चार तथा गुजराती - चार : हिंदी और गुजराती दोनों भाषाओं में चार संख्यावाचक शब्द की स्थिति समान है । विकास की दृष्टि से हिंदी चार का विकास सं. चत्वारि > पा. चत्तारि > प्रा. चत्तारि > अप. चयारि, चारि > (१) हिंदी चार; (२) मध्य गुज. च्यारि > अर्वा. गुज. चार के रूप में हुआ है ।

हिंदी में चार संयुक्त संख्याओं तथा समासों में कई रूपों में मिलता है, यथा: चार(चारगुना, चारपाई, चारखाना), चौ - (चौदह, चौबीस, चौवालीस, चौवन, चौहत्तर, चौमासा, चौबारा, चौगुना, चौकना, चौखट, चौराहा), चवा - (चवालीस), चौं (चौंतीस, चौंसठ), चौर - (चौरासी, चौरानवे)।

गुजराती में यह चौ - (चौद), चो - (चोवीस, चोत्रीस, चोपन, चोसठ), चोर (चोरासी, चोराणु), चुं (चुंवालीस, चुंबोतेर) रूपों में मिलता है।

हिंदी - पाँच तथा गुजराती - पांच : हिंदी तथा गुजराती पाँच संस्कृत के पंच से विकसित है । यथा सं. पंच > पा. प्रा. अप. पंच > (१) हिं. पाँच; (२) मध्य गुज. पांच > अर्वा. गुज. पांच ।

हिंदी में पाँच - (पाँचवाँ, पाँचगुना), पन - (पंद्रह, पन्चानवे, पंसेरी), पैं - (पैंतीस, पैंतालीस, पैंसठ), पच - पच्च - पिच - पिच्च (पच्चीस, पचपन, पचहत्तर, पिचहत्तर, पच्चासी, पिच्चासी, पचानवे, पिचानवे, पचगुना), पिछ - (पिछहत्तर), पँच - (पँचगुना, पँचमेल, पँचलड़ी, पँचमुखी), पंच - (पंचायत, पंचमी, पंचम, पंचवटी, पंचांग, पंचामृत, पंचपात्र), आदि रूपों में तथा गुजराती में पांन - (पांत्रीस, पांसठ), पन - (पंदर), पंच - (पंचावन, पंचोतेर, पंचासी, पंचाणुं), पच - पच्च - (पचीस, पच्चीस), पिस (पिसतालीस) रूपों में प्राप्त होता है ।

हिंदी छह तथा गुजराती - छ : हिंदी छह तथा गुजराती छ लगभग समान हैं । हिंदी तथा गुजराती के छह को सं. 'षट्' का विकसित रूप माना जाता है । सं. षट् > पा. प्रा. छ > अप. छ, छह, > १. हिंदी छह २. मध्य गुज. छ > अर्वा. गुज. छ।

हिंदी में यह संयुक्त संख्याओं तथा समासों में छ - (छब्बीस, छत्तीस, छप्पन, छमाही, छटांक, छठा, छप्पन, छदाम), छि - (छिहत्तर, छिगुणा), छिया - (छियालीस, छियासठ, छियासी, छियानवे), सो - (सोलह) रूपों में तथा गुजराती सोल संस्कृत के षोडश से संबंधित हैं ।

हिंदी - सात तथा गुजराती - सात : हिंदी तथा गुजराती सात संस्कृत के सप्त से विकसित है यथा : सं. सप्त > पा. सत्त > प्रा. अप. सत्त > (१) हिंदी सात; > (२) मध्य गुज. सात > अर्वा. गुज. सात ।

हिंदी में यह संयुक्त संख्याओं में सात - (सातवाँ, सातगुना) सत, सत्त -(सतरह, सतहत्तर, सतसई), सता - सत्ता - (सत्ताईस, सत्तावन, सत्तासी, सत्तानवे), सैं - (सैंतीस, सैंतालीस), सड़ या सड़ - (सरसठ - सड़सठ) आदि रूपों में तथा गुजराती में सत्त - (सत्तर), सता - सत्ता - (सत्तावीस, सत्तावन, सत्तासी, सत्ताणुं), सड - साड -सुड - (सडत्रीस, साडत्रीस, सडतालीस, सुडतालीस, सडसठ), सतो - सित्यो (सतोतेर, सित्योतेर) रूपों में मिलता है ।

हिंदी - आठ तथा गुजराती - आठ : हिंदी तथा गुजराती 'आठ' संस्कृत के 'अष्ट' से विकसित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है; यथा : सं. अष्ट > पा. प्रा. अप. अट्ठ > (१) हिंदी आठ > (२) मध्य गुज. आठ > अर्वा. गुज. आठ ।

हिंदी में संयुक्त संख्याओं में यह आठ - (आठवाँ), अठ - अट्ठ (अठहत्तर, अठगुना, अठन्नी, अठमासा, अठवारा), अठा, अट्ठा - (अठारह, अट्ठावन, अठासी, अठानवे), अड़ - (अड़तीस, अड़तालीस, अड़सठ), अर - (अरसठ) रूपों में तथा गुजराती में अठा - अट्ठा - (अठावीस, अठावन, अठाणुं), अट्या - (अठ्यासी), अड, आड - (अडत्रीस, आडत्रीस अडतालीस, अडसठ), अठ - (अठवाडियुं), अठो - इठो (अठोतेर, इठोतेर) रूप उपलब्ध होते हैं ।

हिंदी नौ तथा गुजराती - नव : हिंदी नौ तथा गुजराती नव दोनों ही संस्कृत नव से विकसित हैं; यथा : सं. नव > पा. नव > प्रा. नव, णव, > अप. णव,नव, > (१) हिं. नौ; > (२) मध्य गुज. नव > अर्वा. गुज. नव ।

हिंदी में नौ का रूप संयुक्त संख्याओं में केवल नवासी और निन्यानवें में ही मिलता है। नौ वाली शेष संयुक्त संख्याएँ दहाई की संख्या में हि. उन (> प्रा. ऊण > सं. ऊन) लगाकर बनती हैं; जैसे, उन्नीस, उनतीस, उन्तालीस, उनचास, उनसठ, उनहत्तर, उनासी । गुजराती में भी नवासी तथा नवाणुं में नव आता है । अन्य संख्याएँ दहाई की संख्या में सं. एकुन (एक - कम) > प्रा. पा. अप. > णगुण > गुज. ओगण जोड़कर बनती है, जैसे ओगणीस, ओगणतीस, ओगणचालीस, ओगणपचास, ओगणसाठ, ओगणसित्तेर, ओगणऐंसी ।

हिंदी - दस तथा गुजराती - दश - दस : हिंदी दस और गुजराती दश संस्कृत के दश से विकसित हैं; यथा : सं. दश > पा. > दस > प्रा. अप. दस (दस, दह, डह, रह, लह भी) > (१) हिं. दस, (२) मध्य गुज. दस > अर्वा. गुज. दस, दश (तत्सम) । हिंदी में संयुक्त रूपों में यह दस - (दसवाँ, दसों, दसियों), दह - (चौदह, दहला, दहाई), रह - (ग्यारह, बारह, तेरह, सत्रह, अठारह), ला - (सोलह), द्रह (पंद्रह) रूपों में तथा गुजराती में यह र- (अगियार बार, तेर, सत्तर), (पंदर), दर-द- (चौद), ल - (सोल) रूपों में मिलता है ।

हिंदी - ग्यारह तथा गुजराती - अगियार : सं. एकादश > पा. एकादस, एकारस > प्रा. अप. अककारह, एग्यारह, > (१) हिं. ग्यारह (२) मध्य गुज. इ (अ) ग्यार > अर्वा. गुज. अगियार।

हिंदी - बारह तथा गुजराती - बार : सं. द्वादश > पा. दादस, बारस > प्रा. बारस, बारह > अप. बारह > (१) हिं. बारह, (२) मध्य गुज. बार > अर्वा. गुज. बार ।

हिंदी - तेरह तथा गुजराती तेर : सं. त्रयोदश > पा. तेरस > प्रा. तेरस, तेरह > अप. तेरह > (१) हिं. तेरह; (२) मध्य गुज. तेर > अर्वा. गुज. तेर ।

हिंदी - चौदह तथा गुजराती - चौद : सं. चतुर्दश > पा. चतुद्दस > प्रा. चउद्दस, चौद्दह > अप. चउद्दह, चौद्दह > (१) हिं. चौदह; (२) मध्य गुज. चऊद > अर्वा. गुज. चौद।

हिंदी - पंद्रह तथा गुजराती - पंदर : सं. पंचदश > पा. पंचदस, पन्नरस, पण्णरस > प्रा. पण्णरस, पण्णरहो, पन्नरह > अप. पण्णरह, पन्नरह > (१) हिं. पंद्रह, (२) मध्य गुज. पंनर > अर्वा. गुज. पंदर (हिंदी तथा गुजराती में द का आगम) ।

हिंदी - सोलह तथा गुजराती - सोल : सं. षोडश > पा. सोलस, सोरस > प्रा. सोलह > अप. सोलह > (१) हिं. सोलह; (२) मध्य गुज. सोल > अर्वा. गुज. सोल ।

हिंदी - सत्रह तथा गुजराती - सत्तर : सं. सप्तदश > पा. सप्तदस, सत्तरस > प्रा. सत्तरस > अप. सत्तरह > (१) हिं. सत्रह, (२) मध्य गुज. सत्तर > अर्वा. गुज. सत्तर । (गुजराती में 'ह' का लोप)

हिंदी - अठारह तथा गुजराती - अढार : सं. अष्टादश > पा. अट्ठादस > प्रा. अप. अट्ठरस,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अट्ठारह > (१) हिं. अट्ठारह, अठारह (२) मध्य गुज. अठा (-ढा) र ('ह' का लोप) > अर्वा. गुजराती अढार, अराढ (ध्वनिविपर्यय से)।

हिंदी - बीस उन्नीस तथा गुजराती - ओगणीश : सं. एकोनाविंशति, ऊनविंशति > पा. एकूनवीस, एकूनविसति > प्रा. एगूणवीसइ, अउणवीसइ, उनवीसइ > अप. एगूणवीस, अउणबीस > (१)हिं. उन्नीस; (२) मध्य गुज. एगुणबीस > अर्वा. गुज. ओगणीस/श ।

हिंदी - बीस तथा गुजराती - बीश / स : हिंदी बीस तथा गुजराती बीश/स सं. विंशति से विकसित हैं । हिंदी में 'व' का 'ब' हो गया है; यथा : सं. विंशति > पा. वीसति > प्रा. वीसइ, वीस > आप. वीस > (१) हिं. बीस; (२) मध्य गुज. बीस > अर्वा. गुज. बीस/श । हिंदी में संयुक्त संख्याओं में यह बीस (चौबीस), ब्बीस - (छब्बीस), ईस - (इक्कीस, बाईस, तेईस, पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस) रूपों में है तथा गुजराती में संयुक्त संख्याओं में यह बीस / श - (एकवीस / श, बावीस / श, तेवीस / श. चौवीस / श, छवीस / श, सत्तावीस / श, अठावीश/ श) ही है । पंडित के. का. **शास्त्री के अनुसार** गुजराती वीस / श, एकवीस - श आदि में स - श का उच्चारणभेद स्पष्ट रूप से प्रांतीय है ।

हिंदी - इक्कीस तथा गुजराती एकवीस - श : सं. एकविंशति > पा. एकवीसति > प्रा. एकवीसअ, एक्कवीसा > अप. एक्कवीस > (१) हिं. इक्कीस; (२) मध्य गुज. एकवीस > अर्वा. गुज. एकवीस - श ।

हिंदी - बाईस तथा गुजराती - बावीस / श : सं. द्वाविंशति > पा. द्वावीसति, बावीसति, बावीस > प्रा. बावीस > अप. बावीस, वाइस > (१) हिंदी बाईस; (२)मध्य गुज. बावीस > अर्वा. गुज. बावीस - श ।

हिंदी - तेईस तथा गुजराती ते (त्रे) वीस - श

सं. त्रयोविंशति > पा. तेवीसति, तेवीस > प्रा. तेवीस > अप. तेवीस, तेईस > (१) हिं. तेईस; (२) मध्य गुज. त्रेवीस, तेवीस > अर्वा. गुज. त्रेवीस - श. तेंबीस - श ।

हिंदी - चौबीस तथा गुजराती - चोवीस / श

सं. चतुर्विंशति > पा. चतुवीसति, चतुवीस > प्रा. चऊव्वीस, चउवीस > अप, चउवीस, चोवीस, चउवीस > (१) हिं. चौबीस; (२) मध्य गुज. चउवीस > अर्वा. गुज. चोवीस - श ।

हिंदी - पच्चीस तथा गुजराती पचीस - श

सं. पंचविंशति > पा. पंचविसति, पंचवीस > प्रा, पंचवीस > अप. पंचवीस, पचीस > (१) हिंदी पचीस, पच्चीस; (२) मध्य गुज. पणवीस > अर्वा. गुज. पचीस - श, पच्चीस - श ।

हिंदी - छब्बीस तथा गुजराती - छवीस - श : सं. षडविंशति > पा. छब्बीसति > प्रा. छब्बीस > अप. छब्बीस > (१)हिंदी छब्बीस; (२) मध्य गुज. छब्बीस > अर्वा. गुज. छवीस-श।

हिंदी - सत्ताईस तथा गुजराती - सत्तावीस - श

सं. सप्तविंशति > पा. सत्तवीसति > प्रा. सत्तवीस > अप. सत्तावीस, सत्ताईस, > (१) हिंदी सत्ताईस; (२) मध्य गुज. सत्तावीस > अर्वा. गुज. सतावीस - श, सत्तावीस - श ।

हिंदी - अट्ठाईस तथा गुजराती अठावीस - श : सं. अष्टाविंशति > पा. अष्टाविंसति > प्रा. अट्ठावीस > अप. अट्ठावीस, अट्ठाइस, > (१) हिं. अट्ठाईस, अट्ठाइस; (२) मध्य गुज. अट्ठावीस > अर्वा. गुज. अठावीस - श, अठ्ठावीस - श ।

हिंदी - उन्तीस तथा गुजराती - ओगणत्रीस - श : सं. एकोनत्रिंशत्, ऊनत्रिंशत् > पा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एगूणतिंसति > प्रा. एगूणतीस, अऊणतीस > अप. एगूणतीस, अऊणतीस, ऊणतीस > (१) हिं. उन्तीस, उन्तिस, उन्तिस; (२) मध्य गुज. एगूणत्रीस > अर्वा. गुज. ओगणत्रीस - श, ओगणतीस - श ।

हिंदी - तीस तथा गुजराती - त्रीस - श

हिंदी 'तीस' तथा गुजराती 'त्रीस - श' संस्कृत 'त्रिंशत' से विकसित हैं;यथा: सं. त्रिंशत् > पा. तिंसति > प्रा. तास > अप. तीस > (१) हिं. तीस; (२) मध्य गुज. त्रीस, तीस > अवा. गुज. त्रीस - श । हिंदी में 'तीस' संयुक्त संख्याओं में तीस-(इकत्तीस), त्तीस-(बत्तीस), स-(छत्तीस) रूपों में है। गुजराती मे भी संयुक्त संख्याओं में यह तीस - तीश, त्रीस- (एक ही (त्री)स - श, बत्रीस : श, चोती (त्री)स - श, पांत्रीस - श, छत्री - श, आदि में है। गुजराती त्रीस - श का 'त्र' सीधे संस्कृत 'त्रिशति' के 'त्र' का प्रतिनिधि है ।

हिंदी - इकती(त्ती)स तथा गुजराती - इकत्री(ती)स - श : सं. एकत्रिंशत् > पा. एकतिसति > प्रा. एक्कतीस, इक्कतीस > अप. एक्कतीस, एकत्रिस, एक्कतीस > (१) हिंदी एकत्तीस, इकतीस; (२) मध्य गुज. एकत्रीस > अर्वा. गुज. एकत्री(ती)स - श ।

हिंदी बत्तीस तथा गुजराती बत्रीस - श : सं. द्वात्रिंशत् > पा. द्वा.त्तिसति, बत्तिसति, बत्तिस > प्रा. बत्तीस > अप. बत्तीस > (१) हिं. बत्तीस; (२) मध्य गुज. बत्रीस > अर्वा. गुज. बत्रीस - श ।

हिंदी - तैंतीस तथा गुजराती तेत्रीस - श : सं. त्रयस्त्रिंशत् > पा. तेत्तिंसति > पा. तेतिस > अप. तेतीस, तेत्रिस > (१) हिं. तैंतीस, तंत्रीस; (२) मध्य गुज. तेत्रीस > अर्वा. गुज. तेत्रीस - श ।

हिंदी - चौंतीस तथा गुजराती - चोत्रीस - श : सं. चतुस्त्रिंशत् > पा. चतुत्रिंशति > प्रा. चउत्रीसा, चोंत्रीस > अप. चउतीस > (१) हिं. चौंतीस; (२) मध्य गुज. चउत्रीस > अर्वा. गुज. चोत्रीस - श ।

हिंदी पैंतीस तथा गुजराती - पांत्रीस - श : सं. पंचत्रिशत् > पा. पंचतिंसति > प्रा. पंचतीसा, पणतीसं, पन्नतीसं, पणतीस, > अप. पंचतीस, पंचतीस, पइंतिस > (१) हिं. पैतीस, पैंतिस; (२) मध्य गुज. पांत्रीस-श > अर्वा. गुज. पांत्रीस - श ।

हिंदी - छत्तीस तथा गुजराती - छत्रीस - श

सं. षट्त्रिंशत् > पा. छतिंसति, छतिंस > प्रा. छत्तीसा, छत्तीसं > अप. छत्रिस, छत्तीस > (१) हिं. छत्रीस, छत्रिस; (२) मध्य गुज. छत्रीस > अर्वा. गुज. छत्रीस - श ।

हिंदी - सैंतीस तथा गुजराती - सडत्रीस - श : सं. ..तत्रिंशत् > पा. सत्ततिंसति > प्रा. सत्ततीसा, सत्ततीसं > अप. सत्ततीस, सयंतीस > (१) हिं. सैंतीस, सैंतिस; (२) मध्य गुज. सतत्रीस > अर्वा. गुज. सडत्रीस - श, साजत्रीस-श ।

हिंदी - अड़तीस तथा गुजराती - अडत्रीस - श

सं. अष्टात्रिंशत् > पा. अट्ठातिंसति > प्रा. अट्ठातीसा, अट्ठातीस > अप. अट्ठीस > (१) हिं. अड़तीस, अड़तिस (२) मध्य गुज. अट्ठत्रीस > अर्वा. गुज. अडत्रीस - श, आडत्रीस - श ।

हिंदी - उनतालीस तथा गुजराती - ओगणचालीस - श

सं. एकोनचत्वारिंशत्, ऊनचत्वारिंशत् > पा. एगूणचत्रालीसा > प्रा. अगूणचात्रालीसा, उऊणत्तालीस, उन्तालीस > अप. एगूणचयालिस, ऊन्तालिस > (१) हिं. उन्तालीस,. उन्तालिस. उनतालीस, उन्चालीस, (२) मध्य गुज. एगूणचालीस > अर्वा. गुज. ओगणचालीस - श ।

हिंदी - चालीस तथा गुजराती - चालीस - श : हिंदी चालीस, और गुजराती चालीस - श संस्कृत चत्वारिंशत् से विकसित हैं: यथा: सं. चत्वारिंशत् > पा. चत्तालीसति, चत्तालीस > प्रा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चत्रालीसा, चत्तलीस, चालीस > अप. चालीस, चयालिस > (१) हिं. चालीस, चालिस; (२) मध्य गुज. च्यालिस > अर्वा. गुज. चालीस - श ।

हिंदी में इसके विभिन्न रूप चालीस, तालीस - (उन्चालीस, उन्तालीस, इक्तालीस, तैंतालीस, पैंतालीस, सैंतालीस, अड़तालीस), आलीस - (बयालीस, चवालीस, छियालीस) विद्यमान हैं । गुजराती में यह चालीस - श (ओगणचालीस - श), तालीस - श (एकतालीस - श, बेतालीस - श. तें (त्रे) तालीस - श, पिसतालीस - श, छे (छें) तालीस - श, स (सु) तालीस - श, आदि) तथा आलीस - श (चुमा (चुंवा) लीस - श) रूपों में है ।

हिंदी - इकतालीस तथा गुजराती - एकतालीस - श : सं. एकचत्वारिंशत् > पा. एकचतालीसति > प्रा. एकचतालीसा > अप. एकतालीस > (१) हिं. एकतालीस, एकतालिस; (२) मध्य गुज. एकतालीस > अर्वा. गुज. एकतालीस - श ।

हिंदी - बयालीस तथा गुजराती - बेतालीस - श

सं. द्विचत्वारिशत्, द्वाचत्वासिंशत् > पा. द्वाचतालीसति, द्विचतालीसति > प्रा. बयालीस. बाअत्तालीस > अप. बेतालीस, बयालीस > (१) हिं. बयालीस, बयालिस; (२) मध्य गुज. बइतालीस > अर्वा. गुज. बेतालीस - श ।

हिंदी - तैंतालीस तथा गुजराती - त्रेतालीस - श : सं. त्रिचत्वारिंशत् > पा. तिचतालीसति, तेचतालीसति > प्रा. तेअतालीसा, तेचत्रालीसा, तेंतालीस > अप. तितालीस, तेतालीस, त्रयालीस > (१) हिं. तैंतालीस, तेंतालीस, तेतालीस, तितालीस, तितालिस; (२) मध्य. गुज. त्रयालीस > अर्वा. गुज. तेतालीस - श, त्रेतालीस - श ।

हिंदी - चवालीस तथा गुजराती - चुंवालीस - श : सं. चतुश्चत्वारिंशत् > पा. चो. (चु) तालीसति > प्रा. चोअतालीसा, चोवालीसा > अप. चउआलीस > (१) हिं. चौवालीस, चवालीस, चौंतालीस; (२) मध्य गुज. चुंवालिस > अर्वा. गजु. चुंवालीस - श, चुंमालीस - श, चुम्मालीस - श ।

हिंदी-पैंतालीस तथा गुजराती-पिसतालीस-श : सं. पंचचत्वारिंशत् > पा. पचतालीस, पणतालीस > (१) हिं. पैंतालीस, पिंतालीस; (२) मध्य गुज. पंचितालीस > अर्वा. गुज. पिसतालीस - श ।

हिंदी-छियालीस तथा गुजराती-छेंतालीस-श : सं. षट्चत्वारिंशत् > पा. छचतालीसति > प्रा. छअत्तालीसा, छाचालीस, छायालीस > अप. छायालिस > (१) हिं. छियालीस, छयालीस; (२) मध्य गुज. छइतालीस > अर्वा. गुज. छेंतालीस-श, छेतालीस-श ।

हिंदी-सैंतालीस तथा गुजराती - स(सु) डतालीस-श

सं. सप्तचत्वारिंशत् > पा. सत्तचतालीसति > प्रा. सत्तअहालीसा > अप. सततालीस > (१) हिं. सैंतालीस, सैंतालिस; (२) मध्य गुज. सततालीस > अर्वा. गुज. स(सु)डतालीस-श।

हिंदी-अड़तालीस तथा गुजराती-अ(उ)डतालीस-श : सं. अष्टचत्वारिंशत् > पा. अट्ठचतालीसति > प्रा. अट्ठयत्तालीसा, अट्ठअत्तालीसा > अप. अट्ठतालीस > (१) हिं. अड़तालीस; (२) मध्य गुज. अठतालीस > अर्वा. गुज. अ(ड)डतालीस-श ।

हिंदी-उनचास तथा-गुजराती-ओगणपचास-श : सं. एकोणपंचाशत्, ऊनपंचाशत् > पा. एकूनपन्नसा > प्रा. एगूणपंनासा, ऊणपंचासा > अप. एगूणपंनास, एगूणपंचास, उणंचास > (१) हिं. उन्चास, उनचास; (२) मध्य गुज. उगुणपंचास > अर्वा. गुज. ओगणपचास-श ।

हिंदी-पचास तथा गुजराती-पचास-श

हिंदी पचास तथा गुजराती पचास-श संस्कृत पंचाशत् से विकसित हैं; यथा: सं. पंचाशत् > पा. पन्नासा > प्रा.पंनासा, पंचासा > अप. पंचास, पंनास > (१) हिं. पचास; (२) मध्य गुज.पंचास > अर्वा. गुज. पचास-श ।

हिंदी में पचास संयुक्त संख्याओं में 'प' के लोप से चास (उनचास), पन (त्रेपन,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पचपन), वन (इक्यावन, बावन, सत्तावन, अठावन, चौवन), प्पन(छप्पन) रूपों में तथा गुजराती में यह पचास श (ओगणपचास-श), वन (एकावन, बावन, पंचावन, सतावन, अठावन), पन (त्रेपन, चोपन), प्पन (छप्पन) रूपों में देखने को मिलता है ।

हिंदी-इक्यावन तथा गुजराती - एकावन : सं. एकपंचाशत् > पा. एकपन्नासा > प्रा. एक्कावण्ण > अप. एक्कावन > (१) हिं. एकावन, इक्यावन, (२) मध्य गुज. एकावन > अर्वा. गुज. एकावन ।

हिंदी-बावन तथा गुजराती-बावन : सं. द्वापंचाशत् > पा. बापंचासा > प्रा. बावन्ना, बावण्ण > अप. बावण > (१) हिं. बावन; (२)मध्य गुज. बावन > अर्वा. गुज. बावन ।

हिंदी-तिरवन तथा गुजराती-त्रेपन : सं. त्रिपंचाशत् > पा. तिरपंचासा > प्रा. तेवन्न > अप. त्रेपन > (१) हिं. त्रेपन, तिरपन; (२) मध्य गुज. त्रेपन > अर्वा. गुज. त्रेपन, तेपन ।

हिंदी-चौवन तथा गुजराती-चोपन

सं. चतुः पंचाशत् > पा. चहुपंचासा > प्रा.चउवन्ना, चउवण्ण > अप. चउवण, चउवन > (१) हिं. चौवन, चौअन; (२) मध्य गुज. चोपन > अर्वा. गुज. चोपन ।

हिंदी-पचपन तथा गुजराती-पंचावन : सं. पंचपंचाशत् > पा.पंचपंचासा > प्रा. पंचावन्ना > अप. पंचावन्न, पचपण > (१) हिं. पचपन; (२) मध्य गुज. पंचावन > अर्वा. गुज. पंचावन।

हिंदी-छप्पन तथा गुजराती - छप(प्प)न

सं. षट्पंचाशत् > पा. चप्पंचासा > प्रा. छप्पना; छप्पण > अप. छप्पण, छप्पन > (१) हिं. छप्पन; (२) मध्य गुज. छप्पन; छपन > अर्वा. गुज. छप्पन, छपन ।

हिंदी-सत्तावन तथा गुजराती - सता(त्ता)वन

सं. सप्तपंचाशत् > पा. सत्रपंचासा > प्रा, सत्तावन्ना > अप. सत्तावण, सत्तावन > (१) हिं. सत्तावन; (२) मध्य गुज. सत्तावन > अर्वा. गुज. सतावन, सत्तावन ।

हिंदी-अठावन तथा गुजराती-अठावन

सं. अष्टपंचाशत् > पा. अट्ठापंचासा > प्रा. अट्ठावन > अप. अट्ठावण > (१) हिं. अठावन, अट्ठावन; (२) मध्य गुज. अट्ठावन > अर्वा. गुज. अठावन; अट्ठावन ।

हिंदी-उनसठ तथा गुजराती-ओगणसाठ : सं. एकोनषष्टि, ऊनषष्टि > पा. एकूनसट्ठि > प्रा. एगूणसट्ठि, अउणसिट्ठि > अप. एगूणसट्ठि, उणसट्ठ > (१) हिं. उनसठ; (२) मध्य गुज. एगूणसाठि > अर्वा. गुज. ओगणसाठ-ठ्य ।

हिंदी-साठ तथा गुजराती-साठ : हिंदी और गुजराती 'साठ' संस्कृत के 'षष्टि' से विकसित है; यथा: सं. षष्टि > पा. सट्ठि > प्रा. सट्ठि > अप. सट्ठि > (१) हिं. साठि, साठ; (२) मध्य गुज. साठि > अर्वा. गुज. साठ-ठ्य । हिंदी में यह सठ रूप में (उनसठ, इकसठ, बासठ, त्रेसठ, चौंसठ, पैंसठ, छियासठ, सड़सठ, अड़सठ) तथा गुजराती में साठ (-ठ्य) (ओगणसाठ-साठ्य) तथा सठ-सठ्य (एकसठ-ठ्य, बासठ- ठ्य, त्रेसठ-ठ्य, चोसठ-ठ्य, पांसठ-ठ्य, छासठ-ठ्य, सडसठ-ठ्य, अडसठ-ठ्य) रूपों में उपलब्ध होता है ।

हिंदी-इकसठ तथा गुजराती-एकसठ : सं. एकषष्टि > पा. एकसट्टि > प्रा. एक्कसट्टि, एकसट्टि > अप. एकसट्टि > (१) हिं. इकसठ; (२) मध्य गुज. एकसठि > अर्वा. गुज. एकसठ-ठ्य।

हिंदी-बासठ तथा गुजराती-बासठ : सं. द्विषष्टि, द्वाषष्टि > पा.द्वासट्ठि, बासट्ठि > प्रा. बासट्ठि > अप. बासट्ठि > (१) हिं, बासठ; (२) मध्य गुज. बासठि > अर्वा. गुज. बासठ-ठ्य ।

हिंदी-तिरसठ, तथा गुजराती-त्रेसठ : सं. त्रिषष्टि, त्रयषष्टि > पा. तिरसट्ठि, तिसट्ठि > प्रा. तेसट्ठि > अप. त्रेसठि > (१) हिं. त्रेसठ, तिरसठ; (२) मध्य गुज. त्रेसठि > अर्वा. गुज. त्रेसठ, तेसठ-ठ्य ।

हिंदी-चौंसठ तथा गुजराती-चोसठ : सं. चतुःषष्टि > पा. चतुषट्ठि > प्रा. चउसट्ठि > अप.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चउसट्ठि > (१) हिं. चौसठ, चौंसठ; (२) मध्य गुज. चउसठि > अर्वा. गुज. चोसठ(ठ्य)।

हिंदी- पैंसठ तथा गुजराती-पांसठ : सं. पंचषष्टि > पा. पंचसट्ठि > प्रा. पणसट्ठि > अप. पणसट्ठि, पणसठि > (१) हिं. पैंसठ; (२) मध्य गुज. पणसठि > अर्वा. गुज. पांसठ (ठ्य)।

हिंदी-छियासठ तथा गुजराती-छासठ :

सं. पट्षष्टि > पा. छसट्ठि > प्रा. छासट्ठि, छासट्ठी, छाछट्ठि > अप. छावट्ठि, छासट्ठि > (१) हिं. छियासठ, छासठ; (२) मध्य गुज. छासठि > अर्वा. गुज. छासठ-ठ्य ।

हिंदी-सड़सठ तथा गुजराती-सडसठ : सं. सप्तषष्टि > प्रा. सत्तसट्ठी, सत्तसट्ठि > अप. सत्तट्ठि > (१) हिं. सड़सठ, सरसठ; (२) मध्य गुज. सतसठि > अर्वा. गुज. सड़सठ-ठ्य ।

हिंदी-अड़सठ तथा गुजराती-अड़सठ

सं. अष्टषष्टि, अष्टाषष्टि > पा. अट्ठसट्ठि > प्रा. अट्ठसठी, अट्ठसट्ठि > अप. अट्ठसट्ठि > (१) हिं. अड़सठ, अरसठ; (२) मध्य गुज. अट्ठसट्ठि > अर्वा. गुज. अड़सठ-ठ्य ।

हिंदी-उनहत्तर तथा गुजराती- ओगणोतेर : सं. एकोनसप्तति, ऊनसप्तति > पा. एकूनसत्तति > प्रा. एगूणसत्तरी, अउणसत्तरी > अप. एगूणसत्तरि, उणसत्तरि > (१) हिं. उनहत्तर; (२) मध्य गुज. एगूणसत्तरि > अर्वा. गुज. ओगणोतेर, ओगणोसित्तेर ।

हिंदी-सत्तर तथा गुजराती-सित्तेर : हिंदी सत्तर तथा गुजराती सित्तेर संस्कृत सप्तति से विकसित हैं; यथा: सं. सप्तति > पा. एकसत्तति > प्रा. एक्कसत्तरि, एकसत्तरि > अप. सत्तरि, सत्तर > (१) हिं. सत्तर; (२) मध्य गुज. सत्तरि > अर्वा. गुज. सित्तेर ।

हिंदी में यह संयुक्त संख्याओं में हत्तर -अत्तर (उनहत्तर, इकहत्तर, बहत्तर, तिहत्तर, चौहत्तर, पिछहत्तर, छिहत्तर-छिअत्तर, सतहत्तर-अठहत्तर-अठत्तर) रूप में तथा गुजराती में यह सित्तेर (ओगणोसित्तेर), तेर (ओगणोतेर, एकोतेर, बोतेस, तोतेर-तोंतेर, चुंबोतेर-चुमोतेर, पंचोतेर, छोतेर-छोंतेर, सतेर-सितेर, अठोतेर-इठोतेर) रूपों में उपलब्ध होता है ।

हिंदी-इकहत्तर तथा गुजराती-एकोतेर

सं. एकसप्तति > पा. एकसत्तति > प्रा. एक्कासत्तरि, एकसतरि > अप. एकसतरि, एकोतरइ > (१) हिं. इकहत्तर; (२) मध्य गुज. एकोतरि > अर्वा. गुज. एकोतेर ।

हिंदी-बहत्तर तथा गुजराती-बोते(त्ते)र

सं. द्वासप्तति, द्विसप्तति > पा. द्वासत्तति > प्रा. बासत्तरि, बाहत्तरि, बावत्तरि, बुहुत्तरि > अप. बहत्तरि > (१) हिं. बहत्तर; (२) मध्य गुज. बहत्तरि, बहतरि > अर्वा. गुज. बोतेर, बोत्तेर।

हिंदी-तिहत्तर तथा गुजराती-तोंतेर

सं. त्रिसप्तति, त्रयः सप्तति > पा. तिसत्तति > प्रा. तिसत्तरि > अप. तिहत्तरि, तिहुसत्तरि, तेउत्तरि > (१) हिं. तिहत्तर; (२) मध्य गुज. तिहुसत्तरि > अर्वा. गुज. तोतेर, तोंतेर, तोत्तेर।

हिंदी-चौहत्तर तथा गुजराती-चुंवो (चुंमो) तेर : सं. चतुः सप्तति > पा. चतुसत्तरि > प्रा. चउहत्तरि, चउसत्तरि > अप. चउत्तरि, चउहत्तरि > (१) हिं. चौहत्तर, (२) मध्य गुज.चउंतरि > अर्वा. गुज. चुंमोतेर, चुंवोत्तर ।

हिंदी-पचहत्तर तथा गुजराती-पंचोतेर : सं. पंचसप्तति > पा. पंचसप्तति > प्रा. पंचहतरि > अप. पंचसत्तर, पंचहत्तर > (१) हिं. पचहत्तर पिचहत्तर, पिछहत्तर, (२) मध्य गुज. पंचत्ररि > अर्वा॰ गुज. पंचोतेर ।

हिंदी छिहत्तर तथा गुजराती-छोतेर ।

सं. षट्सप्तति > पा. छसत्तति > प्रा. छहत्तरि, छेहत्तरि > अप. छिहत्तरि > हिंदी छिहत्तर तथा गुजराती - छोतेर ।

हिंदी - सतहत्तर तथा गुजराती - सितोतेर :

सं. सप्तसप्तति > पा. प्रा. छसत्तति > अप. सतहत्तर, सत्ततरि > हिंदी सत्तहत्तर; > (२) मध्य गुज. सत्तोतर, > अर्वा. गुज. सतोतेर, सितोतेर, सत्योतेर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी-अठहत्तर तथा गुजराती-अठोतेर : सं. अष्टसयति > पा. अट्ठसत्तति > प्रा. अट्ठहत्तरि, अट्ठोतरि > अप. अट्ठहत्तरि > (१) हिं. अठहत्तर; (२) मध्यगुज. अट्ठोतरि, अट्ठोत्तर > अर्वा. गुज. अठोतेर, इठोतेर, अट्ठ्योतेर, इठ्योतेर ।

हिंदी-उनासी तथा गुजराती-ओगणाएंसी : सं. एकोनाशीति, ऊनाशीति > पा. एकूनासीति > प्रा. एगूणासी, उणास्सी > अप. एगूणईसी, उणास्सी > (१) हिं. उनासी, उन्नासी, उन्यासी; (२) मध्य गुज. एगूणासी > अर्वा. गुज. ओगणाएंसी, ओगण्याएंशी ।

हिंदी-अस्सी तथा गुजराती-एंसी-शी

सं. अशीति > पा. असीति > प्रा. असीइ, असीई > अप. असिइ,असी, अस्सी > (१) हिंदी अस्सी; (२) मध्य गुज. अइसि, अइसी > अर्वा. गुज. एंसी, एंशी ।

हिंदी में अस्सी संयुक्त संख्याओं में आसी या यासी (उनासी-उन्यासी, इक्यासी-एक्यासी, बयासी, तिरासी-तिर्यासी, चौरासी-तौर्यासी, पचासी, छिआसी-छियासी, सतासी-सत्यासी, अठासी-अठ्यासी) रूप में तथा गुजराती में आसी-शी, यासी-शी (एक्यासी-एक्याशी, ब्यासी-शी, त्र्यासी-शी, अठासी-शी अठ्यासी-शी, नवासी-शी, नेवासी-शी, नव्यासी-शी)रूपों में देखने को मिलता है।

हिंदी-इक्यासी तथा गुजराती-एकासी-शी

सं. एकाशीति > पा. एकासीति > प्रा. एक्कासीइ > अप. इक्यासी, एक्यासी > (१) हिं. इक्यासी, (२) मध्य गुज. इक्यासी > अर्वा. गुज. एक्यासी-शी, एकासी-शी ।

हिंदी-बयासी तथा गुजराती-ब्यासी

सं. द्वयशीति > पाय द्वेअसीति > प्रा. बेआसी, बायासी > अप. बायासी > (१) हिं. बयासी, बयास्सी; (२) मध्य गुज. ब्यासी > अर्वा. गुज. ब्यासी-शी ।

हिंदी-तिरासी तथा गुजराती-त्रासी

सं. त्र्यशीति > पा. तिरसीति > प्रा. तिरासी, त्रेयासी > अप. तिरासी, त्रेयासी > (१) हिं. तिरासी, त्र्यासी; (२) मध्य गुज. त्र्यासी > अर्वा. गुज. त्रासी, त्राशी, त्र्यासी > अर्वा. गुज. त्रासी, त्र्यासी-त्र्याशी, त्यासी, त्याशी।

हिंदी-चौरासी तथा गुजराती-चोरासी-शी

सं. चतुर्शीति > पा. चतुरासीति > प्रा. चयरासीइ, चोरासी > अप. चउरासी, > (१) हिं. चोरासी, चौरासी; (२) मध्य गुज. चउरासी > अर्वा. गुज. चोरासी-चोराशी, चोर्यासी-चोर्याशी ।

हिंदी-पचासी तथा गुजराती पंचासी-शी : सं. पंचाशीति > पा. पंचासीति > प्रा. पंचासीई > अप. पच्चासी, पंचासीइ > (१) हिं. पचासी, पिचासी, पच्चासी, पिच्चासी; (२) मध्य गुज. पंचासी > अर्वा. गुज. पंचासी-शी, पंच्यासी-शी ।

हिंदी-छयासी तथा गुजराती-छयासी : सं. षडशीति > पा. छासीति > प्रा. छासीई, छयासीइ > अप. छासीइ, छयासी > (१) हिं. छयासी, छियासी (२) मध्य गुज. छयासी > अर्वा. गुज. छयासी-शी, छासी-शी ।

हिंदी-सतासी तथा गुजराती-सतासी-शी :

सं. सप्तासीति > पा.सत्तासीति > प्रा. सत्तासीई > अप. सत्तसीइ, सत्तासी > (१) हिं. सत्तासी, सतासी; (२) मध्य गुज. सत्यासी > अर्वा. गुज. सतासी-शी, सत्यासी-शी, सत्तासी-शी।

हिंदी-अठासी तथा गुजराती-अठासी-शी : सं. अष्टाशीति > पा. अट्ठासीति > प्रा. अट्ठासीई, अट्ठासि > अप. अट्ठासीह, अट्ठासी > (१) हिं. अट्ठासी, अठ्यासी; (२) मध्य गुज. अट्ठासी > अर्वा. गुज. अठासी-शी, अठ्यासी-अठ्याशी, अट्ठासी-शी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी-नवासी तथा गुजराती-नवासी : सं. नवाशीति > पा. नवासीति > प्रा. नवासीई > अप. नवासीइ, नवासी > (१) हिं. नवासी; (२) मध्य गुज. नव्यासी > अर्वा. गुज. नवासी-शी, नेव्यासी-शी ।

हिंदी-नब्बे तथा गुजराती नेवुं

सं. नवति > पा. नवति, नवुति > प्रा. णवदि, णउइ > अप णवदि,णवइ, नव्वए, नउइ > (१) हिं. नव्वे, नब्बे; (२) मध्य गुज. नवुं > अर्वा. गुज. नवुं, नेवुं ।

हिंदी संयुक्त संख्याओं में यह नवे-नवें (इक्यानवे, बानवे(वें), तिरानवे(वें), चौरानवे(वें), पिच्चानवे(वें), छियानवे(वें), अठानवे(वें), निन्यानवे(वें) रूप में मिलता है । गुजराती में यह संख्याओं में आणु-णुं (एकाणु-णुं, बाणुं, त्राणु-णुं, चोराणु-णुं, पंचाणु-णुं, सताणु-णुं, अठाणु-णुं, नवाणु-णुं) रूप में है ।

हिंदी इक्यानवे तथा गुजराती-एकाणु-णुं : सं. एकनवति > पा. एकानवुति > प्रा. एक्काणउई, एक्काणउ > (१) हिं. इक्यानवे; (२) मध्य गुज. एक्काणु > अर्वा. गुज. एकाणु-णुं ।

हिंदी बानवे तथा गुजराती बाणु-णुं

सं. द्विनवति, द्वानवति > पा. द्वानवुति > प्रा. बाणबई, बाणउइ > अप. बाणवइ, बानवे > (१) हिंदी बानवे; (२) मध्य गुजराती बाणु-णुं > अर्वा. गुज. बाणु-बाणुं ।

हिंदी-तिरानवे तथा गुजराती-त्राणुं : सं. त्रिनवति, त्रियोनवति > पा. तिरनवति > प्रा. तिरण्णउई > अप. तिरण्णउइ, ताणउ > (१) हिं. तिरानवे-तिरानबे, तिरानबें-तिरानवें; (२) मध्य गुज. त्राणुं > अर्वा. त्राणुं, त्राणु, ताणुं, ताणु ।

हिंदी-चौरानवे तथा गुजराती-चोराणुं

सं. चतुर्नवति > पा. चतुनवुति > प्रा. चउणउई, चउणवई > अप. चउरानवइ > (१) हिं. चौरानवे-वें, चौरानबे-बें; (२) मध्य गुज. चौराणु > अर्वा. गुज. चोराणु-चोराणुं ।

हिंदी-पंचानवे तथा गुजराती-पंचाणु-णुं : सं. पंचनवति > पा. पंचनवुति > प्रा. पंचणवई > अप. पंचण्णवइ, पंचाणउ > (१) हिं. पचानवे-पचानबे, पचानबें, पचानवें, पिचानवे-वें-बें-बें; (२) मध्य गुज. पंचाणुं > अर्वा. गुज. पंचाणु-णुं ।

हिंदी-छियानवे तथा गुजराती-छनुं

सं. षण्णवति > पा. छन्नवुति > प्रा. छण्णउई, छण्णवई > अप. छण्णउइ, छण्णवइ, छन्नउ > (१) हिं. छानवे-वें, छियानवे-वें; (२) मध्य गुज. छयाणुं > अर्वा. गुज. छनु-छनुं, छन्नु-छन्नुं ।

हिंदी सतानवे तथा गुजराती सताणु-णुं

सं. सप्तनवति > पा. सत्तनवुति > प्रा. सत्ताणउई, सत्ताणवई > अप. सत्ताणवइ, सत्ताणउ > (१) हिं. सत्तानवे-वे; (२) मध्य गुज. सताणुं > अर्वा. गुज. सताणु-णुं, सत्ताणु-णुं ।

हिंदी-अठानवे तथा गुजराती-अठाणु-णुं : सं. अष्टानवति, अष्टनवति > पा. अट्ठानवुति > प्रा. अट्ठाणउई, उट्ठाणवई > अप. अट्ठाणउ > (१) हिं. अट्ठानवे, अठानवे-वें-बें बें; (२) मध्य गुज. अट्ठाणु अर्वा. गुज. अठाणु-णुं, अट्ठाणु-णुं ।

हिंदी-निन्यानवे तथा गुजराती-नवाणु

सं. नवनवति > पा. नवनवुति > प्रा. णवणवई > अप. णवणउ > (१) हिं. निन्यानवे-वें-बें-बें; (२) मध्य गुज. नवाणुं > अर्वा. गुज. नवाणु-णुं, नव्वाणु-णुं ।

हिंदी-सौ तथा गुजराती-सो : सं. शतम् > पा. सतं > प्रा. सअं, सअ > अप. सउ > (१) हिं. सौ; (२) मध्य गुजराती सउ > अर्वा. गुज. सो।

इस तरह से हिं. 'सौ' तथा गुज. 'सो' सं. 'शतम्' से विकसित हैं । हिंदी में सौ संयुक्त संख्याओं में सौ, सौ (एक सौ-सौ, चार सौ-सौ, तीन सौ-सौ, आदि) तथा सैं (सैंकड़ा, एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैं एक, दो सैं दस) रूप में मिलता है । गुजराती में यह सें, सो (वस्सें-सो, चार सें-सो) रूप में देखने को मिलता है ।

हिंदी-हजार तथा गुजराती-हजार : 'हजार' शब्द हिंदी तथा गुजराती दोनों भाषाओं में स्पष्ट रूप से फारसी से आया है । संस्कृत में इसके लिए 'सहस्त्र' तथा 'शतशत' दो रूप देखने को मिलते हैं । मध्य गुजराती में 'सहस' रूप मिलता है लेकिन अर्वाचीन गुजराती में इसके स्थान पर हजार रूप ही अधिक प्रचलित है ।

हिंदी-लाख तथा गुजराती-लाख

हिं. 'लाख' तथा गुज. 'लाख' सं. लक्षं > प्रा. लक्खं > प्रा. लक्खं > अप. लक्खु > (१) हिं. लाख; (२) मध्य गुज. लाख > अर्वा. गुज. लाख रूप में विकसित है ।

हिंदी-करोड़ तथा गुजराती-करोड़ : डॉ. भोलानाथ तिवारी हिंदी करोड़ का संबंध सं. कोटि > पा. कोटि > अप. कोडि > हिं. करोड़ ('र' का आगम) रूप में मानते हैं। डॉ. धीरेंद्र वर्मा हिंदी 'करोड़' की व्युत्पत्ति अस्पष्ट मानते हैं।

डॉ. हरिवल्लभ भायाणी (शब्दकथा, पृ. ११४) भी गुज. 'करोड़' के 'र' के लिए लिखते हैं कि गुजरात में अशिक्षित लोग प्राय: तांडव का त्रांडव, भक्षवुं, भरखवुं, शाण से सराण आदि शब्दों का 'र' युक्त उच्चारण करते हैं । इसी के सादृश्य पर सं. कोटि से पा. कोडि > प्रा. कोड > अप. क्रोड > गुज. 'करोड' रूप बन गया ।

हिंदी-अरब तथा गुजराती-अबज : हिं. 'अरब' सं. 'अर्बुद' से तथा गुजराती 'अबज' संस्कृत 'अब्ज' से संबंधित है । संस्कृत में अर्बुद तथा अब्ज का प्रयोग दस करोड़ के लिए होता था लेकिन हिंदी और गुजराती में ये शब्द सौ करोड़ के लिए प्रचलित हो गए ।

हिंदी और गुजराती के अपूर्ण संख्यावाचक शब्द

हिंदी-पाव तथा गुजराती-पा

हिंदी 'पाव' (१/४) तथा गुजराती 'पा' (१/४) दोनों मूलतः एक समान हैं । विकास की दृष्टि से सं. पादः > प्रा. पाओ > अप. पाउ > (१) हिं. पाव; (२) मध्य गुज. पा > अर्वा. गुज. पा है । हिंदी में पाव भी कभी कभी 'पा' रूप में भी उच्चरित होता है ।

गुजराती में 'पाव' के लिए पा के अतिरिक्त पाशेर भी प्रयुक्त होता है । हिंदी में पाव पउआ, पौआ-पौवा, पइया-पैया रूप में भी प्रचलित है ।

हिंदी-चौथाई तथा गुजराती-चतुर्थांश (१/४) : गुजराती में 'चतुर्थांश' संस्कृत तत्सम रूप प्रयुक्त होता है जबकि हिंदी में १/४ के लिए 'चौथाई' तद्भव रूप में प्रयुक्त होता है । गुजराती में 'चतुर्थांश' के अतिरिक्त चोथ्यो-चोथ्यी-चोथ्यु आदि विकारी रूप भी मिलते हैं । इनका मूल रूप 'चौथ' सं. 'चुतुर्थ' > प्रा. चउत्थ से विकसित है ।

हिंदी-तिहाई तथा गुजराती-तृतीयांश (१/३) : गुजराती में 'तृतीयांश' संस्कृत तत्सम रूप में प्रयुक्त होता है जबकि हिंदी में तिहाई तद्भव रूप में । हिंदी तथा गुजराती में इसके लिए क्रमशः तीसरा भाग तथा त्रीजो भाग जैसे स्वतंत्र प्रयोग भी प्रचलित हैं ।

हिंदी-आधा तथा गुजराती-अडधो (१/२) : धीरेंद्र वर्मा हिंदी 'आधा' को सं. अर्द्ध > पा. प्रा. अप. 'आधा' से संबंधित मानते हैं । डॉ. उदयनारायण तिवारी तथा डॉ. भोलानाथ तिवारी हिं. 'आधा' का विकास सं. अर्द्धक > प्रा. अद्धस से मानते हैं । हिंदी में आधा के आधा, आधी, आधे, अध रूप देखने को मिलते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुजराती अडधो-अरधो का मूल रूप 'अरधा' सं. 'अर्द्ध' का ही तद्‌भव रूप हैं । गुजराती में अडधो-अरधो को अड़धो-अड़धु, अध-रूप भी प्रचलित हैं ।

हिंदी-पौन तथा गुजराती पोणुं (३/४) : हिंदी में 'पौन' के पौना, पौनी, पौने तथा गुजराती में पोणु के पोणो, पोणी, पोणुं, पोणो, रूप मिलते हैं । इनके क्रमशः 'पौन' तथा 'पोण' रूप संस्कृत के पादोन (पाद+ऊन) से विकसित हैं ।

हिंदी-सवा तथा गुजराती-सवा (१/४) : हिं. 'सवा' तथा गुज. 'सवा' दोनों एक समान हैं। ये दोनों सं. सपाद >प्रा. सवाअ > अप. सवाअ > (१) हिं. सवा; (२) मध्य गुज. सवा > अर्वा. गुज. सवा रूप में विकसित हैं । हिंदी में 'सवा' के विकारी रूप सवाया, सवाई, सवाए तथा गुजराती में सवायो, सवाई, सवायी, सवाया, सवायुं, सवायो रूप प्रचलित हैं ।

हिंदी-साढ़े, साड़े तथा गुजराती-साड़ा (+१/२) : हिंदी और गुजराती में यह शब्द 'तीन' या इससे आगे की संख्याओं में **आधा भाग** दिखाने के लिए जोड़ा जाता है जैसे-हिं. 'साड़े तीन' गुज. साडा त्रण आदि ।

साढ़े का संबंध धीरेंद्र **वर्मा एवं उदयनारायण** तिवारी ने सं. 'सार्द्ध' से माना है । भोलानाथ तिवारी ने साढ़े का संबंध **सं. सार्ध > प्रा.** सड्ढ > साढ़ > साढ़े से माना है। हिंदी भाषा, पृ. ११६) गुजराती 'साडा' **का विकास के.** का. शास्त्री ने (गुजराती रूपरचना, पृ. १६२) सं. सार्थक > प्रा. सड्ढ्य > **अप. सडढअ >** मध्य गुज. साढउ > साडअ > अर्वा. गुज. साडा रूप में स्वीकार किया है।

हिंदी-डेढ़, ड्योढ़ा तथा गुजराती-दोढ, दोढुं ($1\frac{1}{2}$) : हिं. डेढ़ तथा गुज. 'डोढ' मूलतःएक हैं । हिंदी में इसके **'ड्योढ़ा' 'ड्योढ़ी', 'डयोढ़े'** तथा गुजराती में दोढ़ो, दोढी, दोढुं आदि रूप मिलते हैं ।

हिंदी 'डेढ़' का **संबंध बीम्स ने** (भाग-दो, पृ. १४४) 'द्वितीय + अर्ध' से माना है । धीरेंद्र वर्मा इसे सं. द्वयर्द्ध **> प्रा. दिअड़ > डेढ़** रूप में स्वीकार करते हैं । उदयनारायण तिवारी सं. द्वि + अर्द्ध 'से' **डेढ़ तथा सं. द्वि + अर्द्ध** + क से द्वि अर्दक > ड्योढ़ा का विकास मानते हैं । हरगोविंददास **शास्त्री (के. का. शास्त्री.**, गुज. भाषाशास्त्र, पृ. २९० पर उद्‌घृत) गुज. 'दोढ़' के विकास के लिए **सं.** 'द्वयपाध' शब्द की कल्पना करते हैं ।

हिंदी अढ़ाई-ढ़ाई, ढैया तथा गुजराती-अढ़ी, अढियु ($2\frac{1}{2}$)

हिंदी-अढ़ाई-ढाई- ढैया तथा गुज. 'अढी' दोनों मूलतः एक समान हैं । हिं. 'ढाई' का विकास धीरेंद्र वर्मा (पृ. २७२) ने सं. अर्द्धतृतीय > प्रा. अड़तीय > अढ़ाई, ढाई रूप में माना है। उदयनारायण तिवारी (पृ. ४४८) सं. अर्द्धतृतीय (क) से अड्ढइअ > अढ़ाई, ढाई रूप स्वीकार करते हैं । भोलानाथ तिवारी (पृ. ६०३) इसे सं. अर्द्धतृतीय अड्ढतिज्ज > अड्ढाइज > अड्ढाइअ > अढ़ाई, ढाई रूप में विकसित मानते हैं । गुजराती 'अढी' का विकास भी के. का. शास्त्री (गुजराती भाषाशास्त्र, पृ. २९०) सं. अर्द्धतृतीय > प्रा. अड्ढाइज्ज > अड्ढाइय > अढी रूप में मानते हैं ।

इस तरह से हिंदी और गुजराती दोनों को संख्यावाचक शब्दों का मूल स्रोत संस्कृत है तथा संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, (१) हिंदी, (२) गुजराती के क्रम में इनका विकास हुआ है ।

●●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ऐ लड़की' : एक चिन्तन यात्रा

- डॉ. मधु संधु

'ऐ लड़की' 1991 में प्रकाशित कृष्णा सोबती का लघु उपन्यास अथवा लम्बी कहानी है । यहाँ एक मर रही औरत अपने जीवनानुभवों के अमूल्य निष्कर्षों के उपहार अपनी बेटी को दे रही है। किन्तु हम इसे कहें क्या ? यह वृद्धा अज्ञेय के 'अपने-अपने अजनबी' की सेलमा नहीं है और न ही उपन्यास का विषय मात्र संत्रास अथवा जिजीविषा है । उपन्यास भारतीय धर्म-दर्शन-संस्कृति में पुरुष के अति उच्च स्थान का परिचय देने के पश्चात् अनुत्तरदायित्व के कारण उसके पद का अवमूल्यन चित्रित करता है । गृहस्थ के इस परम पुरुष को बॉयलाजिकल स्तर पर भी सोबती ने महिमामंडित किया है । घर-गृहस्थी में खटती है औरत और नाम पाता है पुरुष । बेटे के जन्म पर मंगल इसलिए मनाए जाते हैं कि वह अन्तिम समय काम आएगा, पर वह पत्नी के आँचल में जा छिपता है । लड़कियों को तो तैयार ही जानमारी के लिए किया जाता है । भाई को कालेज भेजा जाता था और बहन की पढ़ाई पंडित, ग्रंथी, मालवी के पास। "भाई पढ़ रहा है, जाओ दूध दे आओ । भाई सो रहा है, जाओ कंबल ओढ़ा दो । जल्दी से भाई की थाली परोस दो, उसे भूख लगी है । भाई खा चुका है, लो अब तुम खा लो ।" 'ऐ लड़की' एक प्राचीना के जीवन सार और नवीना के जीवन स्टाइल को लेकर पुरुषीय परंपरित स्वरूप को चुनौती देता उपन्यास है ।

'ऐ लड़की' की माँ ने भले ही पतंजलि न पढ़ा हो, पर विद्या सुनी भी है, देखी भी और जी भी है । यहाँ पुरुष के स्वरूप की दार्शनिक व्याख्या करके उसे उच्चतम सिंहासन पर बिठा दिया गया है। वह सूर्य है । ठीक वैसे ही जैसे इस ब्रह्माण्ड का महानायक सूरज है । बाकी सब ग्रह उससे छोटे हैं। कहते हैं कि कुंती को सूरज से पुत्र हुआ था, पर नहीं, यदि सूरज कुंती को ढाँप लेता तो जीव की नसल ही खत्म हो जाती । वृद्धा माँ इसका विवेचन करती हुई कहती है कि सृष्टि का हर नर सूरज से शक्ति खींचता है । उसी की कृपा से अपने तपोबल को जगाता है । नारी पराशक्ति बनकर पृथ्वी की तरह उसे अपने घेरे में समेट लेती है । धूप सूरज के वस में है और धरती उसी पर रीझी है ।

यहाँ बायलाजिकल स्तर पर सृष्टि निर्माण का सारा श्रेय पुरुष को ही दिया गया है । पुरुष के वरदान से ही परिवार की ज्योति जलती है । इन्सान के बच्चों में पिताओं का ही रक्त दौड़ता है । किंतु बिडम्बना यह है कि जीव निर्माण (मनुष्य) की अपनी सम्पूर्ण सत्ता और सामर्थ्य के बावजूद पुरुष को काया घड़ने के वरदान से वंचित रखा गया है । हर नर अपने को परम पुरुष इसलिए समझता है कि जीवन की कस्तूरी उसी को लगी है । जीवन हिरण है हिरण । कस्तूरी मृग । इस क्षणभंगुर जगत में अपनी महक फैला यह जा और वह जा । थोड़े से पलों के लिए औरत इस भागते मृग को थाम लेती है और आप मृगया बन जाती है । यही सृष्टि का खेल है । यहीं से चल निकली है संतति । नर जिस जल में स्नान करता है, नारी उसी को धारण कर हरियाली है । वह रात के टुकडे कर डालता है और यह इसे पिरोकर गले में डाल लेती है । बच्चा बनाया कि गले में मनका डाल लिया ।

पति-पत्नी संबंधों में समानता की समर्थक होते हुए भी वृद्धा दाम्पत्य का निचोड़ बताती कहती है -"लड़की सबकी यात्रा इसी तरह घात-प्रतिधात में गुजरती है । इसका यह खेल बराबरी का नहीं ऊपर नीचे का है । घर का स्वामी अपनी कमाई से परिवार के लिए सुविधाएँ जुटाता है । साथ ही अपनी ताकत कमाता बनाता है । इसी प्रभुताई के आगे गिरवी पड़ी रहती है बच्चों की माँ ।.....मर्द काम करता है तो उसे एवज में अर्थ धन प्राप्त होता है । औरत दिन-रात जो खटती है वह बेगार के खाते में जाता है । वह जानती है कि गृहस्थ के शिकारे का चप्पू औरत ही चलाती है किन्तु माँ, पत्नी, बहू, नानी, दादी, नाम की ही म्हारानी है ।" जीवन यात्रा का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निचोड़ उसका रसीला और कटु दोनों प्रकार का है । जानती है कि जमाना बदल चुका है और पुरुष पहले से कहीं अधिक लालची और भौतिकतावादी हो चुका है क्योंकि औरत कमाने लगी है । इसलिए वह औरत ही नहीं, उसकी समूची कमाई को भी मात्र और मात्र अपने लिए मानने की मैटिरलिस्टिक एप्रोच लिए है । नर्स सूसन को चौकन्ना करती कहती है कि एक-आध दोस्त बनाए रखो, किन्तु खर्च आधा-आधा किया करो, पूरा नहीं अन्यथा यूं हीं हज़म कर ली जाओगी। नारी की सदियों पुरानी कमजोर स्थिति का प्रतिरोध करती चेतावनी देती है कि शादी के बाद किसी के हाथ का झुनझुना नहीं बनना और उसे अपनी ताकत बनाने की कोशिस करना । दाम्पत्य के संदर्भ में 'ऐ लड़की' में पूरी यात्रा पुरुषीय एकछत्र साम्राज्य को हिलाने, झकझोरने के लिए आर्थिक रूप में स्वावलम्बी स्त्री को चुनौती देती है। समानता का पोषण करती है । पुरुषीय दबदबे को सरकाने के लिए प्रयत्नबद्ध है । वह अपने भरे-पूरे नारी जीवन से असन्तुष्ट है । वह बेटी, पत्नी, बहू, माँ, सास, नानी, दादी, समधिन सब कुछ बन चुकी है किन्तु मन में एक ही आकांक्षा है कि यदि पुनर्जन्म की बात में कुछ सत्य है तो अगले जन्म में पुरुष बनकर देखना चाहती है कि बलवन्त सैनिक कैसे स्त्री और परिवार पर छाया रहता है । उसका दबदबा कैसे बना हरता है । वह वर्षों पहले के मृत पति की आहटें आज भी सुनती रहती है । एक समय था जब कुंडी खडखटाने से पहले ही दरवाजा खोलकर उसे अचम्भित कर दिया करती थी और मृत्यु शैय्या पर लेटी आज यह विधवा उसी प्रतीक्षा में खोई बेटी से कहती है -"एक बात तो बता लड़की, बहुत दिनों से तुम्हारे पिताजी को नहीं देखा, कहाँ हैं ? कभी पति द्वारा लाए सेंडिल याद आते हैं और कभी फर का कोट । यद्यपि जिस तरह घर गृहस्थी में वह अपने समूचे अस्तित्व को भूलती रही है, हरेक के लिए घड़ी बनी रही है, इससे स्पष्ट है कि हर गृहस्थी के झमेलों से पति सदैव बाहर ही रहना चाहता था । युवावस्था ही नहीं वृद्धावस्था और यहाँ तक कि मरणोपरान्त भी पत्नी से अतिरिक्त प्रेम,राग, सत्कार पुरुष को विरासत में मिला है । माँ और माँ की माँ- किसी की भी जीवनगाथा से कोई भी अंश उठा लो - यह सच्चाई सामने खड़ी दृष्टिगत होती है । माँ को याद है जब मृत्यु शैय्या पर पड़े नाना हल्की आँच पर भूनी जा रही सूजी की सुगंध की बात करने लगे थे, तो सुनने वाले सभी अपनी मुस्कुराहटें न रोक सके, पर नानी को हाथ-पाँव पड़ गए । पिता बनकर भले ही पुरुष सदैव घाटे में ही रहता है, किन्तु पत्नी की मन-आत्मा पर शासन उसी का चलता है ।

रिश्तों के और भी रहस्य 'ऐ लड़की' में खोले गऐ हैं । कुँवारी बेटी घर-गृहस्थी का माप-तौल न जानने के कारण खूब खुले हाथों खर्च करती है । माँ की लम्बी बीमारी और बाकी सभी रिश्तेदारों के मौन ने उसकी मन:स्थिति में थोड़ी-बहुत उदासीनता ला दी है । स्वर की चिकनाई कई बार गायब हो जाती है । शायद इसीलिए माँ भी उसे जब तब कोंचती रहती है - "तुम अपने-आप में हो क्या? तुम सी तो नानी दादी बन चुकी हैं । अपने दिल से अब भी नई-नवेली बनी फिरती हो.....तुम इन दिनों इसी इन्तजार में हो कि माँ जाए तो फुरसत हो। ....खुदमुख्तारी चलाओगी किस पर ? तेरी पंक्ति में कोई नहीं । न किसी की माँ , न दादी, न नानी । लड़की तुम हो वनस्पति, कुश, घास, तिनका।......लम्बे चौड़े रेगिस्तान से तो सागर भर जल अच्छा । खाते में कुछ हो भी तो ।"

सास बहू संबंधों पर भी वह अपने जीवन का निचोड़ बताते हुए कहती है - "घरवालियाँ अपने हाथ में छलनी लेकर बैठी निकालती रहती हैं कंकर...... लड़के माँ को प्यार नहीं जता सकते। अंकुश लगा रहता है । दिखाते यही हैं कि माँ का पुराना प्रकरण कब का भूल चुके हैं । इसी में घरवालियों की खूबी होती है । माँ पिछला अध्याय बनकर रह जाती है । बार-बार वही पुराना प्रकरण - तुम्हारी माँ ने यह क्यों न कहा ? उसने यह क्यों न किया? मुझे वक्त पर यह क्यों न दिया?"

'ऐ लड़की' मृत्यु के आमने सामने खड़े व्यक्ति की जिजीविषा लिए है । वृद्धावस्था और रुग्णावस्था के संत्रास ने अम्मी को दुश्मनों की तरह घेर रखा है । चाय का प्याला पकड़ते ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोचती है कि अभी कितने प्याले बचे होंगे । फ्रेक्चर के कारण टाँगों में पड़ी सलाख के आसपास पस भर गई है । दो दिन से बुखार है । लगता है शिमला बैरियर पर उनकी जीवन गाड़ी रोक दी गई है । अजीब भूतेले दिनरात कमरे में छाए रहते हैं । रुग्णता, बुढ़ापे और अनिवार्य मृत्यु से संत्रस्त होकर भी यह महिला टोटल टेरर की स्थिति में ही है । मात्र मृत्यु की प्रतीक्षा कर रही है । क्योंकि यह मृत्यु जीवन सूत्रों की टूटने का परिणाम न होकर मृत्यु के शाश्वत सत्य से जुड़ी है ।

अम्मी की जिजीविषा अद्‌भुत है । उन्होंने बीमारी को अपने अंदर छलने नहीं दिया वरना अभी तक सब कुछ चाट जाती । वे मजबूती से अड़ी हुई हैं । मन की इच्छाशक्ति पर उन्हें इतना भरोसा है कि वे बचपन में ही अपनी हवा से ऊपर उठ जाती थीं । कहती हैं "अंदर अग्निकुंड होता है ।...शरीर उसी से सेंक खींचता है ।" बुखार और मवाद की पीड़ा के बावजूद वे न नर्स सूसन से कुछ कहती हैं और न बेटी से क्योंकि मरीज की भी थोड़ी इज्जत होती है। यह जिजीविषा उनमें जन्म से है । कालका शिमला के पहाड़ी घुमावदार सफर पर वे फैसला करती हैं कि चक्कर नहीं आना चाहिए तो सचमुच उन्हें कोई चक्कर नहीं आता । अम्मी जानती हैं कि बुढ़ापा आदमी की सारी शोभा खींच लेता है । उसे अशोभन कर डालता है । यह वह घटाटोप है, जो इन्सान को निगल जाता है । उन्हें प्रवासी रोग लगा है, किन्तु वे भयभीत नहीं, यात्रा के अगले पड़ाव के लिए तैयार बैठी हैं। देह तो एक वरण है, पहना तो इस लोक चले आए । उतार दिया तो परलोक । यह निर्भय जिजीविषा का महाकाव्य है ।

भारतीय संस्कृति में पुरुष सदैव एक अद्वितीय, अति आदरणीय, उच्चतम स्थान का अभ्यस्त रहा है । शादी के बाद नवदुल्हन ससुराल में आती है तो उसकी गोद में नर-शिशु बिठाकर शगुन किया जाता है और फिर उसकी गोद नारियल, बादाम, छुहारों की सौगातों से भर दी जाती है । भारतीय परम्परा के अनुसार मृत्यु के सभी संस्कार बेटे द्वारा कराए जाते हैं । कुल की सरदारी लड़कियों को नहीं दी जाती । सगुन शास्त्र से भाई ही पगड़ी बाँधता है और बाकी परिवार की पताका बहू के हाथ में होती है । 'ऐ लड़की' का बेटा कभी माँ का हाल पूछने नहीं आता। उसके आमने-सामने नहीं होती और वह मछली की तरह तड़प रही है । बार-बार कहती है - "मेरे बेटे को बुलाओ। बेटे, मुझे विदा करो । लड़की, अपने भाई को आवाज दो ।" 'ऐ लड़की' एक चुनौती है - पुरुष प्रधान समाज में बेटी के यहाँ मर रही माँ के कारण । वह बेटे की प्रतीक्षा अवश्य कर रही है, किन्तु उसने बेटे के यहाँ जाकर अन्तिम साँसें गिनने का कभी सोचा भी नहीं । आज तक बेटे के जन्म के बिना जीवन निरर्थक मानने वाली औरत ने खुलेआम स्वीकार लिया है कि बेटी को जन्म देकर ही माँ की पीढ़ी आगे बढ़ती है । बेटे के लिए जान छिड़कने वाली माँ का सुर कहीं न कहीं बेटी से मिला हुआ है । 'ऐ लड़की' में पुरुष का सिंहासन डोलता दिखाई देता है, क्योंकि उसने स्वयं संस्कारों के उत्तरदायित्व की धज्जियाँ उड़ा दी हैं । अम्मी के कुछ अन्य सांस्कृतिक विश्वास हैं; जैसे -संयोग बलवान हो तो पुण्य अपने आप जुड़ते जाते हैं । परिवार अपने चाहने-करने से नहीं बनता, वह मनुष्य का पूर्वार्जित होता है ।

'ऐ लड़की' के पात्र खाने-पीने के काफी शौकीन हैं । अम्मी को ग्रीन लिप्टन चाय पसन्द है । दूध में कभी इलायची, पिसे बादाम, मुनक्का एवं दालचीनी डाली जाती है, कभी हारलिक्स, कभी ब्रांडी । थकावट होने पर सूसन मम्मी को ग्लूकोज, शीरा अथवा इलेक्ट्रोल देती है । सोड़े में आइसक्रीम डालकर पी जाती है । काफी, आमरस, पाइनएपल और अन्य फलों के रस का जिक्र है। माँ बेटी का सिगरेट पीना और नींबू पानी को बीयरज़ करने के ढंग से लगता है कि प्राचीना और नवीना दोनों ही संस्कृति के पाश्चात्यीकरण की मुद्रा में हैं । बच्चे के जन्म पर शहद चटाया जाता है । अंगूर या अनार के दाने होंठों से छुवाए जाते हैं । गाजर के मुरब्बे पर मलाई डालना, हलवे में पिसी गिरियाँ डालना पात्रों के आभिजात जिह्वा स्वाद का परिचय देते हैं । टोस्ट, परोठा, अंडा, दही, मक्खन, खोआ, मटन, पूरी , पूए, पकोड़ों का उल्लेख भी मिलता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान सम्बन्धी अनेक सूचनाएँ सोबती ने दी हैं । शिमला में खूब बर्फ पड़ती है । समर हिल में सुरंगें हैं । बड़ांग जैसी चाय कहीं नहीं । जांखू में बंदर बहुत होते हैं, जो इन्सानी भाषा समझते हैं। चने उनका प्रिय भोजन है । वेशभूषा का सोबती ने विशेष वर्णन नहीं किया । बस इतना ही संकेत मिलता है कि बरसात में बरसाती पहनी जाती है । अम्मी के क्रीम रंग के, छोटी एड़ी के नरम चमड़े के सैंडल चीनी शू मेकर ने बनाए थे । फर वाले कोट की फर किसी भोटिया से खरीदी गई थी । माँ के पर्स में चाबियाँ तथा लॉकर में गिन्नियाँ रहती हैं ।

पुरुष प्रधान समाज में जन्मी, पुरुषीय स्नेह-दबदबे-अधिकार-कर्तव्य में पली 'ऐ लड़की' की वृद्धा का दुख यह है कि उसकी एक बेटी कुँवारी है । वह जब-तब उसे कोंचती रहती है । व्यंग्य करती है । ताने देती है । "लचक न हो, झूमना न आता हो , तो भला आगे बढ़कर कौन राह रोक लेगा । किसी का साथ पाकर हस्ती कुछ और सी हो उठती है । अन्दर-बाहर सब्जा उगने लगता है।.....सीढ़ी पर चढ़ने के लिए पाँव हरकत न करें तो कौन सा पुण्य अपने आप आन मिलेगा । एक बार का बिछुड़ा संयोग कई जन्मों पर जा पड़ता है ।" किन्तु समस्त पुरुषीय सत्ता को चुनौती दे रही इस लड़की के लिए यह सब व्यर्थ है । वह अपने में इतनी संपूर्ण है कि माँ के पूछने पर जरूरत पड़ने पर किसे आवाज दोगी। कहती है -"मैं किसी को नहीं पुकारती । जो मुझे आवाज देगा, मैं उसे जवाब दूँगी ।" यहाँ नारी की स्वाधीनता ही उसकी ताकत, सामर्थ्य और शक्ति बनकर आई है । क्योंकि दुनिया में बिछौने के सुख के अलावा भी ढेरों नेमतें भरी पड़ी हैं ।

'ऐ लड़की' कविता के इलाके से गद्य का, मृत्यु के क्षेत्र से जीवन का चुपचाप उठाकर लाया-सहेजा गया अनुभव है । लेखक निरन्तर सामान्य चेतना और विक्षिप्तता की हद के आरपार तस्करी करता है । 'ऐ लड़की' का हर वाक्य सूत्र वाक्य है - 1. मरीज के कमरे में धूप नहीं जलाते, गुलदान में फूल लगाते है । 2. बूढ़े-बीमारों का हालचाल पूछना हफ्ते में एक बार ही काफी होता है । 3. बूढ़ों के लिए न घर में जगह होती है, न दिल में । 4. बच्चा गोद में हो तो समझो तीन लोक एक मिश्री के कूजे में । 5. दूसरों के बस में पड़ा मरीज मौत से पहले ही मरा हुआ होता है। 6. किसी के धकेलने से कोई धावक नहीं होता, खुद अपनी दौड़ दौड़ने से धावक कहलाता है । 7. गृहस्थ में पाँव रखकर स्त्री का जो मंथन-मर्दन होता है, वह भूचाल के झटकों से कम नहीं होता । 8. माँ अपने को जो चाहे समझे, पर बच्चों के लिए वह मात्र घर की व्यवस्था करने वाली है । 9. सबकी जन्मपत्री चित्तकबरी ही हुआ करती है। हर्ष-शोक, हानि-लाभ, ऊँच-नींच, सब बारी-बारी अपनी झलक दिखाते हैं ।

सोबती की भाषा मुहावरों से सनी पड़ी है । कहीं पंजाबी मुहावरे मिलते हैं जैसे -मिश्री का कूजा, जिस्म फरोल मारा, गले का मणका । कहीं नवीन मुहावरों को जन्म दिया गया है। जैसे -गूँगी आँखें, बीमारी का छिड़काव, फोन पर टाफियाँ बाँटना, हवा को हाथ से टटोलना, अंधेरे में चाँदी का साँप देखना, सेमल के पेड़ से सेब नहीं उतरते, जो पोत बनाएँगे, वही सागर उतरेंगे ।

उपन्यास पूर्वदीप्ति शिल्प में है । नायिका अम्मी वृद्धा है । वानप्रस्थ उतरा हुआ है । कान देखते हैं, आँखें सुनती हैं । एक तो बुढ़ापा आदमी की सारी शोभा खींच लेता है, ऊपर से गिर जाने पर टाँग टूट गई । पकी उम्र में वह आहटें सुन रही है । थोड़े बहुत होश-हवास दुरुस्त हैं । मृत्यु द्वार पर खड़ी यह प्राचीना तहखानों में जा उतरी है । पूरे पिछवाड़े को देख रही है । पुरानी से पुरानी परछाई आँखों में झूम रही है । अंदर गोदाम बन चुका है । पुराने माल की ढेरियाँ लगी पड़ी हैं । नींद में जैसे कोई बारिश की आवाज सुनता है, ऐसी ही यह पुरानी औरत चोला छोड़ने से पहले बीते वक्त से बतिया रही है । निरन्तर प्रलापों के कारण उपन्यास में प्रलापीय शिल्प सर्वत्र उपस्थित है ।

●●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी कहानी में साम्प्रदायिक तनाव और नारी मनःस्थित

- शैली जग्गी

साम्प्रदायिक तनाव- दो भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों, समुदायों और जातियों के मध्य व्यष्टि से समष्टिगत होते कारणों को लेकर प्रसरण पाता वह तनाव है जो कभी धर्म, कभी जाति और कभी मनुष्य के कारण होता है और इस छोटी - सी चिंगारी से उफनती ज्वाला में दोनों सम्प्रदाय भिड़ जाते हैं। चाहे इनके द्वारा उठाए प्रश्न वर्तमान धर्म निरपेक्ष युग में कोई प्रासंगिकता न रखते हों, परन्तु इनसे उत्पन्न जलजले मनुष्य जाति का सर्वस्व लील जाते हैं- विशेषतः - नारी का ।

इतिहास साक्षी है कि वैश्विक स्तर पर साम्प्रदायिक तनाव की बलिवेदी पर सदियों से प्रतिद्वंद्वी दल का पौरुषीय प्रतिशोध नारी के सतीत्व हनन का जश्न मना उसे व्यक्ति से वस्तु बनाता रहा है । त्रेता युग में राम के पुरुषत्व को चोट पहुँचाने के लिए रावण सीता का हरण करता है । सभी इसी साम्प्रदायिक मानसिकता की प्रतिक्रियास्वरूप रघुवंश - वानर - सम्प्रदाय और असुर जाति के मध्य अगणित शवों का विनिमय होता है , जिन पर रोने के लिए शेष बचती हैं– माँयें, बहनें और पत्नियाँ अर्थात् नारी । महाभारत काल में इस नारीसम्पदा को पुरुष ने जुए में हार-जीतकर प्रताडित एवं निर्वस्त्र किया और आज भी कर रहा है अर्थात् नारी की शोचनीय दशा में कोई परिवर्तन या प्रवर्त्तन नहीं हुआ । मध्यकाल में यवनों के भारत पर आधिपत्य से उत्पन्न साम्प्रदायिक असुरक्षा ने नारी शोषण के अन्यान्य द्वार खोल दिए । औरत को पर्दानशीं कर उससे शिक्षा का अधिकार भी छीन लिया गया। उसे उपहार और भेंट मानकर इनाम में अपने दरबारियों को बाँटने वाले पुरुष ने उसे 'हरम की जीनत', 'चीज'से ऊपर कुछ समझा ही नहीं । सन् १८५७ई. में नारी लक्ष्मीबाई की अंग्रेजों द्वारा बर्बर हत्या भी नारी शोषण की ही एक कड़ी है । हिन्दू धर्म अर्थात् दूसरे सम्प्रदाय की स्त्री और इतना जीवट ? यह भला श्वेत व्यक्ति कैसे स्वीकार करते ? पुरुष द्वारा नारी अस्मिता को जीर्ण क्षीण करने की यह प्रक्रिया आज अनवरत अस्तित्व पाये हुए है। इस साम्प्रदायिक तनाव के कई रूप और स्थितियाँ हिन्दी कहानी में मिलती हैं । भारत -पाक विभाजन इसका मुख्य उदाहरण है । विभाजन में जिस वर्ग को सर्वाधिक हानि और ठेस पहुँची- वह नारी ही है। यह नारी किसी भी धर्म, जाति अथवा सम्प्रदाय की रही हो, विभाजन ने नारी का नारीत्व, मातृत्व, भगिनीत्व, पत्नीत्व तथा दुहितृत्व नष्ट-भ्रष्ट करके रख दिया । हिन्दी कहानी में यह नारी तिल-तिलकर जली है। कतरा-कतरा बही है और सिसक-सिसक कर दफन हुई है, जीवित या मृत रूप में ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभाजन में शारीरिक शोषण की शिकार हुई नारी की त्रासदी रांगेय राघव की 'तबेले का धुंधलका', अमृतराय की 'व्यथा का सरगम', 'अंधी लालटेन', रेणु की 'जलवा', राजेन्द्रसिंह बेदी की 'लाजवन्ती' और मोहन राकेश की 'मलबे का मालिक' जैसी कहानियों में मिलती है। पुरुष के लिए नारी बहुमूल्य एवं उपयोगी सम्पत्ति है, कंज्यूमर गुड्स का एक अंग है। 'तबेले का धुंधलका' कहानी ने भारत-पाक विभाजन के समय स्थापित- विस्थापित, शरणार्थी - शरणदाता पुरुष के लिए स्त्री क्रय - विक्रय की वस्तु है। तबेला देने वाले पुरुष को पगड़ी और किराये के एक हजार रुपये चाहिए, किन्तु यदि विस्थापित व्यक्ति के साथ कुँवारी बहन हो तो यह सौदा पाँच सौ रुपये में भी तय हो सकता है। पुरुषसत्ताक व्यवस्था में स्वयं को तुच्छ और सस्ता मानना नारी को घुट्टी में मिला है। अतः यहाँ नारी एक तबेले की बिसात पर होम कर दी जाती है। 'व्यथा का सरगम' की नारी साम्प्रदायिक तनावों की द्वेष -संहार भूमि से दूर भगिनीत्व के संवेदना स्थल पर खड़ी है। एक खूबसूरत हिन्दू पठान नवयौवना को विभाजन ने वैधव्य,शारीरिक शोषण और अर्द्धविक्षिप्ति दी है; तो क्या यह अनिवार्य है कि वह किसी मुस्लिम युवती की लुटती अस्मत में अपना प्रतिशोध खोजे ? वहाँ न पाषाण है, न अमानव, न अन्यायी, न ही निर्मम और इसलिए वह पहले से मुस्लिम युवती को और फिर स्वंय को खंजर मारकर आत्महत्या कर लेती है। पलायन उसकी विवशता है, विकल्प है। पुरुष सदृश्य नेतृत्व कर पुरुषीय अहम् को चोट पहँचाने वाली ब्राउन और गुलाम स्त्री को गोरा और शासक पुरुष भला कैसे झेल सकता है ? 'अंधी लालटेन' की कमली स्वराजियों के साथ आजादी की लड़ाई में शामिल होने के कारण अंग्रेजों द्वारा सामूहिक बलात्कार की शिकार बना विक्षिप्त कर दी जाती है। क्रान्ति और नृतत्व की चाह के कारण उसके पंख काट दिए जाते हैं। हर बार साम्राज्यवादी शक्तियाँ द्रौपदी को नग्न करती रही हैं। 'जलवा' मुस्लिम नेत्री की संघर्ष गाथा है। बुर्का फरोश, पर्दानशीं औरत नेतागीरी करे और नेतृत्व भी जो उसके अपने धर्म के विपरीत हो, यह विधर्मी तो दूर स्वधर्मी पुरुष भी स्वीकार भी नहीं कर सकता, ऐसी पुरुषों की स्वरचित सृष्टि है। हिन्दू -मुस्लिम एकता की समर्थक की मानवतावादी, सृष्टि-उदार दृष्टि के कारण स्वधर्मी युवक ही भीड में उसे निर्वस्त्र कर चेहरे पर एसिड डाल देते हैं लेकिन इतना कुछ झेलकर भी यह औरत हारती नहीं, अडिग और ज्वलित रहती एक अग्निशिला बनकर शरीअत और इस्लाम के विधि कानूनों पर प्रश्नचिह्न लगाती है, जिसने नारी को सदैव पुरुष द्वारा 'रक्षणीय' माना 'रक्षक' नहीं। आश्चर्य होता है कि पुरुष अथवा दो सम्प्रदाय आपस में लड़ते हैं, तलवारें निकालते हैं, एक-दूसरे को जान से मारते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, परन्तु कभी पुरुष को नग्न नहीं किया जाता । उसे पुरुष पहले और आदम बाद में मानते हैं जबकि नारी उसके लिए नारी कम और हव्वा अधिक है । नारी को कमजोर और निःशस्त्र करने का अचूक बाण उसका यौन स्तर पर शारीरिक उत्पीडन ही है । भारत -पाक विभाजन की ही त्रासदी का एक अन्य चित्र राजेन्द्रसिंह वेदी की 'लाजवन्ती'की लाजवन्ती प्रस्तुत करती है । विभाजन के समय सुन्दरदास की पत्नी लाजवन्ती एक मुस्लिम पुरुष के स्वस्थ संरक्षण में रहते हुए भी पति पुरुष सुन्दरदास प्रदत्त एक मात्र पूँजीमार और फटकार को मानसिक गहराइयों में स्त्री धन समझ सँजोए रखती है किन्तु पति पुरुष उसके स्वस्थ सौन्दर्य के कारण ही उसे स्वीकार नहीं कर पाता क्योंकि उसे तो मात्र वही पत्नी स्वीकृत है जो भ्रमरगीत की गोपियों अथवा बिहारी की नायिका की तरह प्रिय-वियोग में सूखे पत्तों सदृश्य जलकर राख होना जानती हो । नारी शोषण का यही मौन स्वर मोहन राकेश की 'मलबे का मालिक' में ध्वनित हुआ है । इस मलबे के भीतर चिरागदीन की विलाप करती आत्मा ही नहीं, वल्कि जुबैदा, किश्वर और सुल्ताना की सिसकती रूहें भी दफन हैं, जिन्हें रक्खा पहलवान और उसके साथी बलात्कार कर पाकिस्तान को दे देते हैं । अपनों के बीच सहायता के लिए चीखती ये स्त्रियाँ अपनों द्वारा ही छली जाती हैं ।

साम्प्रदायिक तनाव ने नारी के मातृत्व को भी छलनी किया । उसके बेटे की हत्या हुई अथवा उसका बेटा हत्यारा बना, दोनों स्थितियों में संत्रस्त नारी ही रही। विभाजन में सद्यःप्रसवा स्त्रियों और अपने नवजात शिशु से बिछुडी माताओं के खंडित मातृत्व को भीष्म साहनी की कहानी 'पाली' और विष्णु प्रभाकर की 'मैं जिन्दा रहूँगा' शब्दबद्ध करती हैं । 'पाली'की कौशल्या दो वर्षीय पुत्र पाली के बिछुड़ जाने पर जवानी में ही बुढ़ा जाती है । पाकिस्तान में बेऔलाद जैनब जिसने लगभग सात वर्ष तक पाली पर अपना मातृत्व लुटाया, कौशल्या की दुःखद स्थित को देख, उसके बेटे को लौटा देती है । यह एक स्त्री का संवेदन संसार है, जिसमें पुरुष प्रवेश नहीं पा सकता। 'मैं जिन्दा रहूँगा' में कथा नायिका राज एक पराए बच्चे को अपना मान एक नई जिन्दगी शुरु करती है और बच्चे के चले जाने पराये बच्चों के लिए ही न चाहते हुए भी अपनी पुरानी दुनिया में लौट जाती है, क्योंकि उसके लिए नारीत्व और पत्नीत्व से भी ऊपर उसका मातृत्व है ।

राज बदल जाये, सिक्का बदल जाये किन्तु नारी के स्नेह बंधन नहीं बदल सकते। कृष्णा सोबती की 'सिक्का बदल गया', महीप सिंह की 'पानी और पुल' तथा विजय चौहान की 'झंडु मिरासी' इसी स्थिति को अंकित करती कहानियाँ हैं । 'सिक्का बदल गया' की शाहनी ने वैवाहिक जीवन के पचास वर्ष पाकिस्तान के उस गाँव में सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर स्नेह की बौछार करते गुजरते हैं जिसे विभाजन के कारण आज उसका हिन्दुत्व छुड़ाने को तत्पर है। बूढ़ी शाहनी दंगे फसाद और प्रतिहिंसा की शिकार बनती है, साम्प्रदायिक मानसिकता में विलुप्त एकता को तलाशती खाली हाथ गाँव से चली आती है और अपनी सारी सम्पत्ति स्नेह -प्रतीक के रूप में गाँव वालों को दे देती है। 'पानी और पुल' में विभाजनोपरान्त पंजा साहिब की यात्रा पर आयी सरदारनी अपने गाँव की जमीन से गुजरते हुए उसे आँसुओं की अविरल धारा से सींचती जाती है। 'झंडु मिरासी' की स्त्रियाँ विभाजनोपरान्त भी जीवन पर्यन्त अपने हृदयों को विभाजित नहीं कर पातीं। इसलिए भारत-पाक युद्ध में वे पैराशूट से उतरने वाले झुन्ड के स्वागत में जुट जाती हैं।

विश्वास, प्रेम और मानवता का ही दूसरा नाम नारी है। धर्म की दीवारें तो पुरुष द्वारा खड़ी की गयी हैं। नारी लाचार होकर बस इनकी ईंट बनती चली गयी है। अज्ञेय की 'शरणदाता', प्रदीप पंत की 'रामपुर रहीमपुर' तथा आचार्य चतुर सेन शास्त्री की 'रज़ील' की नारी साम्प्रदायिक तनावों में जोखिम उठाकर अपनी मानवता का परिचय दे रही है। 'शरणदाता' में आदर्श संरक्षक और शरणदाता, हिन्दू देविंदरलाल को विष दे सकता है, किन्तु शरणदाता शेख़ की बेटी जैबुनिशा साम्प्रदायिक से ऊपर उठ पिता के षडयन्त्र की सूचना शरणार्थी को देकर उसे जीवनदान देती है। 'रामपुर-रहीमपुर' में रामपुर के लोग वृद्ध बदरुद्दीन की हत्या कर सकते हैं, किन्तु समाजसेविका कौसल्यादेवी दंगे के दिनों में अपने जीवन को जोखिम में डाल उनकी प्राणरक्षा करती है। 'रज़ील' की वेश्या अपने शरीर का सौदा कर एक सभ्य व्यक्ति की तीन कुमारियों के कौमार्य की रक्षा करती है। भले ही प्रतिदान में लड़कियों का पिता उस वेश्या की समस्त जीवन पूँजी को हड़प अपनी अमानवता को ही पुष्ट करता है।

नारी के विषय में निर्णय लेने का अधिकार भी पुरुषों को ही है, ऐसा वह सदियों से मानती आयी है। अज्ञेय की 'रमन्ते तत्र देवता' के बंगाली के अन्दर त्रेता युग का वही राम है जिसने पत्नी को रावण की लंका में रहने के कारण अग्नि परीक्षा के उपरान्त भी बहिष्कृत कर दिया था। यहाँ दंगों के समय एक सिक्ख व्यक्ति के साथ रातभर गुरुद्वारे में ठहरने के कारण स्त्री को परित्यक्त होना पड़ता है। अर्थात् पुरुष को कोई भी स्थिति उदार नहीं बना सकी - न शिक्षा, न समय और न ही परिस्थिति। मनुस्मृति का यह श्लोकांश नारी स्थिति पर व्यंग्य प्रतीत होता है और पाठकों के लिए प्रश्निल स्थिति छोड़ जाता है।

ये सभी कहानियाँ एक ही धारणा को पुष्ट करती हैं कि विभाजन में सबसे अधिक नारी -हृदय को ही कचोटा है। भले ही विभाजन एक बार हुआ हो लेकिन, माँ, बहन और पत्नी कई-कई बार विभाजित हुई हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साम्प्रदायिक तनाव का ही दूसरा रूप है -आतंकवाद, जो सामान्य जन के हृदय में त्रास और आतंक उत्पन्न करता है। यहाँ भी सर्वाधिक त्रस्त नारी ही रही। १९८४ ई. के हिन्दू सिक्ख दंगों पर आधारित अनेक हिन्दी कहानियाँ नारी क्षति का प्रत्यंकन करती हैं -ब्रहमदेव की 'वैसे ही', सुरेश सेट की 'विरासत', 'कोई नाम तो दो' और 'रात भर', सिम्मी हर्षिता की 'विस्थापित सदी', विभांशु दिव्याल की 'आतंक मुक्ति', महीपसिंह की 'एक मरता हुआ दिन' और 'पहले जैसे दिन' आदि ऐसी ही कहानियाँ हैं जहाँ नारी लुटी है - कभी शरीर बनकर, कभी माँ होकर, कभी संरक्षिका बनकर और कभी शिकार होकर।

नारी शोषण पर आधारित ब्रहमदेव की कहानी 'वैसे ही'में प्रतिद्वंद्वी धर्म के पुरुष एक स्त्री को चारपाई से बाँध उसका देह हनन कर वैसे ही अग्नि मे झोंक देते हैं जैसे किसी भोज के बाद झूँठे पत्तलों को जला दिया जाता है। यहाँ स्त्री की जली लाश पशुत्व को भी लज्जित करती दिखती है। साम्प्रदायिक दंगों में मानवता और एकता का वाहक निडर व्यक्ति शायद सबसे बड़ा अपराधी होता है -इसी पूर्वाग्रह से लिप्त देश का विधि-कानून सुरेश सेट की कहानी 'रात भर' की रमा को आतंकवादी घोषित कर देता है। चूँकि वह आतंकवादियों से डरती नहीं इसीलिए वह उनसे भी बड़ी अपराधिनी हो सकती है। साम्प्रदायिक तनाव व्यक्ति का यथार्थ ही खंडित नहीं करता, उसके सपनों को भी ध्वंस कर सकता है। 'विरासत' एक माँ का अधूरा अरमान है, जो विरासत में अपने बेटे को एक सांझा मकान देना चाहती है लेकिन शहर का बदलता माहौल उसके स्वप्न को साकार करने में असमर्थ है और वह माँ इसी अकांक्षा को मन मे सँजोए आँख मूँद जाती है। 'कोई नाम तो दो' के नानक को उग्रवादियों ने गोली से उड़ा दिया। नानक की बूढ़ी माँ यह कभी स्वीकार नहीं कर पाती कि उसका पुत्र मर कर अखबार का एक आँकड़ा बन गया है। मातृत्व कोमल हो सकता है परन्तु कमजोर नहीं। इसी का उदाहरण 'विस्थापित सदी' प्रस्तुत करती है। १९८४ के हिन्दू-सिक्ख दंगों पर आधारित इस कहानी की नारी सिंहनी बन अपने पुत्र को सिंह ही देखना चाहती है। उसे ऐसा बेटा चाहिए जो धर्म के लिए मरे, धर्म के लिए डरे नहीं। अतः गुरजीत अपने कटाए हुए केश फिर रखकर गुरजीत सिंह बन जाता है। यह नारी माता जीजाबाई और अभिमन्यु जननी से किन्हीं अर्थों में कम नहीं जिन्होंने अपने पुत्र को बाल्यकाल और प्रसव में ही वीरता की शिक्षा दी थी।

विभांशु दिव्याल की 'आतंक मुक्ति' में एक स्त्री और उसकी बेटी को दंगाई इसीलिए मौत का जामा पहना देते हैं कि वे हिन्दू हैं और यही उनका अपराध है। 'एक मरता हुआ दिन' में साम्प्रदायिक दंगों के शिकार हरनाम सिंह को कोई पानी तक नहीं पिलाना चाहता क्योंकि वह सिक्ख है। तब एक गरीब औरत उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गए छिड़ककर और पानी पिलाकर अपनी धार्मिक संकीर्णता का परिचय देती है । 'अति सर्वत्र वर्जयेत' अर्थात् जब स्थिति सीमा से बाहर हो जाए तो कोई अछूता नहीं रह सकता है । 'पहला जन्म दिन' नारी पर साम्प्रदायिक तनाव के विषाक्त प्रभाव को दर्शाती है । यहाँ हिन्दू स्त्री बाली वर्षों के मित्र सतवीर से इसलिए नाता तोड़ देती है कि उनकी कौम ने इन्दिरा गांधी की हत्या की । साम्प्रदायिक मानसिकता यहाँ नारी हृदय को भी संक्रमित कर गई है ।

हिन्दी कहानी ने देश के साम्प्रदायिक तनावों में भी मानवता के उच्चतम शिखर पर असीन नारी को ही शब्दबद्ध नहीं किया अपितु विदेश में समान स्थिति झेल रही नारी की संवेदनाओं को सँजोया है । ईरान में चल रहे गृहयुद्ध की प्रतिकूल परिस्थितियों पर अधारित नासिरा शर्मा की 'दीवार- दर- दीवार' कहानी यही बयान करती है । कट्टरपंथी पिता और साम्यवादी बेटे -बेटी के वैचारिक मतभेदों के कारण घर में खड़ी दीवारों के बीच एक स्त्री जो पत्नी और माँ दोनों है, चिनी जाने को विवश है क्योंकि उसके लिए स्वयं को पत्नीत्व और मातृत्व के दो हिस्सों में अलग अलग बाँटना संभव नहीं । वह दोनों को साथ ले एक होकर ही जी सकती है ।

एक समयान्तराल बाद भारत में साम्प्रदायिक तनाव सीमा पार से होता हुआ फिर अस्तित्व में आया और 'भारत-कारगिल-युद्ध' ऐतिहासिक पृष्ठों में दर्ज कर गया । इस युद्धीय परिणामों पर आधारित डॉ. मधु सन्धु की कहानी 'एक और छिन्नमस्ता' नारी के एक अलग ही रूप को रेखांकित करती है । जहाँ युद्ध में शहीद हुए आदित्य की माँ अपनी विधवा पुत्रवधू अनिमा को न्याय दिलाने के लिए अपने ही परिवार से बगावत करती है क्योंकि वह एक सम्वेदनशील माँ है जिसका प्रदूषित भौतिकवादी प्रवृत्तियों से कोई सरोकार नहीं ।

हिन्दी कहानी में चित्रित नारी की यह मनःस्थिति प्रमाण है कि पुरुष ने साम्प्रदायिक तनाव जनित यह संविधान नारी हनन के मौलिक अधिकार की नींव पर ही रचा है । यह हनन, शोषण किसी भी स्तर और नारी के किसी भी रूप का हो सकता है । अपने इस संविधान को पुरुष कभी भी अपने अनुकूल संशोधित कर सकता है लेकिन नारी के लिए इस संविधान में कोई लोच नहीं दिखती । उसकी मूर्ति युगों पूर्व एक बार ही प्रतिस्थापित की गई और उसका परिधिकरण कर उसे उसी रूप में जड़ कर दिया गया । नारी ने जब भी इस परिधि को अपने बल पर पाटना चाहा, उसके सामने शोषण की एक नई सरहद तैयार थी कभी गैरों द्वारा तो कभी अपनों द्वारा किन्तु समस्त विपरीत स्थितियों के बावजूद नारी ने मानवीय धरातल को नहीं छोड़ा ।

●●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलती का नाम गाड़ी

- डॉ. राम गोपाल सिंह

[1]

"शेयर बाज़ार कितना गर्म हो रहा है और तुम हाथ पर हाथ धरे बैठे हो। कुछ तो ख्याल करो।मुनाफ़ा की ओर भी ध्यान दो। घाटा हो गया तो कहीं के नहीं रहेंगे और तुम तो जानते ही हो कि निशा के हाथ भी पीले करने हैं", कहते हुए सावित्री ने चाय का कप अपने पति दर्शन कुमार की तरफ बढ़ा दिया।

" अच्छा तो यह बात है। वाह ! अच्छा अब यह बताओ कि मेरे धंधे के साथ तुमने मेरी बेटी निशा को क्यों घसीटा। देखो अभी निशा की उम्र ही क्या है। समझो भी, उसके पढ़ने के दिन हैं ये। और फिर मैं शादी करने पर आऊँ तो मेरे पास कुछ कमी है ?" दर्शन कुमार ने छाती फुलाकर मुस्कराते हुए दार्शनिक भाव में सावित्री की ओर इंगित करते हुए कहना जारी रखा।

"अच्छा ये बताओ कि मेरी बात मानोगे ?"

"मानता कब नहीं।"

"कसम खाओ।"

"क्या संदेह है।"

"अच्छा तो बताओ तुम मुझे खुश देखना चाहते हो।"

"क्यों नहीं तुम्हारी ख़ुशी तो मेरी ख़ुशी है।"

"फिर बात पक्की कर लूँ।"

"कैसी पक्की बात ?"

"वही जो मैंने कहा था।"

"क्या कहा था ?"

"वही।"

"मेरा सिर ! फिर वही-वही की रट। वैसे भी आजकल एजेन्टों ने सिर खा रखा है और ऊपर से रही ये मेरी अर्द्धांगिनी। खाओ, और खाओ मेरा सिर बुझाओ पहेलियाँ।"

"जी ठीक है, बस तुम्हें तो सब कुछ उल्टा लगता है। मत करो. लड़की को घर पर ही साठ बरस कुँआरी रखने की मिन्नत करो प्रभु से। मेरी सुनता ही कौन है इस घर में।"

"ओफ्फो ! तुम समझती नहीं. अच्छा रुको. फोन की घंटी बज रही है। एक मिनट।"

(दर्शन जाता है और रिसीवर हाथ में उठाकर सुनता है।)

हेल्लो। हू इज स्पीकिंग।

गुडमोर्निंग सर। खन्ना स्पीकिंग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी खन्ना साहब । हाउ डू यू डू एंड व्हाट इज गुड न्यूज !

फाइन सर बट नो गुड न्यूज सर, बट वेरी बैड न्यूज सर

वेरी बैड न्यूज - मैं प्रधानमंत्री तो नहीं कि पाँच साल खतम होने वाले हैं और चैन की वंशी में उलट-पलट । अच्छा बताओ क्या बात है ?

जी सर । न. ? कम्पनी के बारे में सुना था कि उसका दिवाला निकलने वाला है । अतः मैंने उसके शेयर जैसे - तैसे ६०% घाटे से बेचकर जान छुड़ाई है।

क्या पाँच लाख का घाटा । मर गया, लुट गया मैं । सत्यानाश हो गया, ओफ्फो ! (रिसीवर पटकता है ।)

(रिसीवर पटकने की आवाज सुनकर भागती हुई सावित्री आती है और उसको मुश्किल से गिरने से बचा पाती है ।)

"जी, क्या बात थी । कौन था फोन पर अरे ! निशा ! निशा !"

"हाँ माँ । क्या बात है ?"

"देख । तेरे डैड को क्या हो गया ।"

"कैसे माँ ?"

"जल्दी से डाक्टर को बुलाओ ।"

(निशा फोन करके डाक्टर को बुलाती है ।)

"माँ, शर्मा जी आ गये हैं।"

"डा. साहब, ये एक साथ बेहोश हो गये हैं ।"

"बहन जी फ़िक्र मत कीजिए । देखता हूँ ।"

(चैक करके) "फिक्र की कोई बात नहीं है । कुछ सदमा बैठ गया है । थोड़ा पानी दो । मुँह पर पानी की बूँदें छिड़क दो ।"

(दर्शन को होश आता है ।)

"डैड कैसे हैं आप ? निशा का स्वर फूटा ।"

"जी तबियत तो ठीक है ?" सावित्री का स्वर फूटा ।

"बहन जी, घबड़ाने की कोई बात नहीं है । ये बरदाश्त नहीं कर पाए किसी परेशानी को और दौरा पड़ने से अचेत हो गए । अच्छा तो चलता हूँ ।"

"अच्छा"

सावित्री और निशा का स्वर एक साथ फूटा ।

[2]

"माँ कुछ तो धीरज रखो । जो होना था हो गया । हमें यही सब देखना था और क्या । पिताजी तो बस बिल्कुल ही दिमागी संतुलन खो बैठे हैं और घर पर निराशा के बादल मड़रा रहे हैं । ऐसे में तुम भी धैर्य नहीं रखोगी तो फिर टूट जायेगा यह घर ।" निशा के स्वर में दिल को छू जाने वाले गर्म हवा में संतुलित झोंके थे जो माँ के गहरे विषाद में उसके मर्म तक को छू पा रहे थे तथा कुछ आगम एवं जीवन के प्रति खासकर दुःख से उबरने के प्रति आशाएँ संचित कर रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका बोलना इस समय रुका जब दर्शन ने चीख़ मारी -

"मैं देख लूँगा स्याले । देख लूँगा, तूने मुझे लूट लिया । डुबो दिया मेरा बिज़नेस। कहीं का नहीं छोड़ा मुझे.... मैं तो तेरी... ।"

"डेड! इस तरह चिल्लाने से कुछ नहीं होगा । आख़िर जो होना था, हो गया। छोड़ो भी, सो जाओ । इतना सोचने से क्या होगा । और आपका बिज़नेस ठप्प हो गया तो क्या हुआ ?" निशा ने समझाने के लहजे से कहा ।

"क्या हुआ ? क्या नहीं हुआ? तुम..." दर्शन ने लहजा बदला ।

"छोड़ो डेड ! अब इस घर पर निराशा के बादल नहीं बरस पाएँगे । मैं इतना तो पढ़ ही गई हूँ कि कुछ न कुछ काम करके आपका हाथ तो बँटा ही सकती हूँ । कल से मैं नौकरी की कोशिश में लग जाती हूँ ।"

"तो तू करेगी नौकरी । अरे, सुनो सावित्री ! ए सावित्री ! देख हमारी निशा बिटिया करेगी नौकरी देखो ! हमारी निशा बिटिया... !"

"माँ, माँ ! अरे पिताजी फिर बेहोश हो गए । वैसे डॉ. के आने का समय हो गया है । वे रोज एक चक्कर लगाते ही हैं ।"

"हाय राम ! क्या होगा । अब इस घर के भाग्य ही बदल गए हैं भगवान ! उबारो हमें । बचाओ हमारी जान ।"

[3]

"माँ ! माँ ! मुझे नौकरी करते एक साल हो गया है । और मैंने ख़र्चे से बचाकर कुछ रकम भी जोड़ ली है । सोचती हूँ कि पिताजी के शेयर वाले मामले के लिए कोई वकील कर लिया जाए क्योंकि मुझे पता चला है कि उसमें एजेन्ट कमल किशोर की कुछ चाल है ।"

"ठीक कहा बेटी । जैसा समझ आए कर । मुझे क्या लेना देना । मेरी कुछ समझ नहीं आता ।"

[4]

"माँ!माँ! ख़ुश ख़बरी ! मिठाई खाओ । पिताजी को सुनाएँगे ख़ुशख़बरी । उन्हें खिलाएँगे मिठाई ।"

"क्या बात है बेटी ?"

"माँ शेयर वाला केस था न । उसमें हमारी जीत हुई । वह वकील हैं रमाशंकर जी । दाद देनी पड़ेगी उनके दिमाग की । ऐसे-ऐसे सवाल उठाए उन्होंने कि नं. १ कम्पनी की तो बोलती ही बन्द हो गई और सारा मामला हमारे पक्ष में । रमाशंकर जी पहले मेरे साथ पढ़ते थे । बाद में उन्होंने वकालत की तथा मैंने दूसरी लाइन पकड़ी ।"

"चल बेटी! तेरे पिता को सुनाते हैं यह ख़ुशी की बात ।"

"डेड तो अभी सो ही रहे हैं ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हटो परे ।"

"डैड ! डैडी ! देखो ! हम खुशखबरी लाए हैं ।"

"हाऊ ! सोने का मुर्गा ।"

"डैड ! आप फिर मालिक बन गए । शेयर बाजार का घाटा कम्पनी ने स्वीकार कर लिया तथा निर्णय आपके पक्ष में गया ।"

"एं!' यह क्या! मैं सचमुच मालिक बन गया । झूठ बोलती है पगली । चल हट ।"

"डैड यह कागज देखो ।" [फोन से नम्बर मिलाकर रिसीवर हाथ में देती है।]

"हैल्लो ! कौन ।"

"हैल्लो ! रमाशंकर वकील स्पीकिंग ।"

"जी क्या कहते हैं । जी मैं दर्शन बोल रहा हूँ । क्या आपको मुझसे काम है ।"

"जी ! मैं आपकी तरफ से आपके शेयर वाले मामले की पैरवी करने वाला वकील हूँ । आप उस मामले में जीत गए हैं । बधाई ।"

"जी! लेकिन! यह कैसे हुआ ।"

"जी । निशा मेरी क्लास फेलो रही है । उसने बताया इस सम्बन्ध में और मैंने केश की पैरवी की । मुझे पता था कि जीत तो होगी ही आपकी ।"

"बेटा कितना खर्चा हुआ इस सब में !"

"जी ! खर्चे की फिक्र न कीजिए । निशा मेरी क्लास फेलो रही है । जो कुछ खर्च हुआ उसने अदा कर दिया है ।"

"बेटे ! एक बार घर आकर दर्शन दो ।"

"जरूर ।"

"अच्छा ।"

(रिसीवर धीरे से रखता है ।)

"निशा । तुम कितनी अच्छी हो । मेरी प्यारी बेटी निशा ।"

(हाथ चूमता है)

"माँ देखो पिताजी अब बहकी-बहकी बातें नहीं कर रहे हैं ।"

"मैं तो अब बिल्कुल ठीक हूँ ।"

| 5 |

"माँ ! रमाशंकर जी अभी तक नहीं आए । उन्होंने १० बजे आने का समय दिया था । अरे ! घन्टी बजी ।"

"आइए । आइए ।"

"हैल्लो निशी ।"

"हैलो शंकर"

"नमस्कार माँ"

"नमस्कार बेटे"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नमस्कार अंकल"

"नमस्कार बेटे ।"

"माँ ! ये ही हैं रमाशंकर जी ।"

"बैठो, बेटे । बड़ी ख़ुशी हुई तुम्हारे आने से । तुम तो देवता सिद्ध हुए हमारे लिए । इनकी हालत भी धन्धा ठप्प होने से बड़ी नाज़ुक हो गई थी । तुमने तो हमें खोई हुई ख़ुशी वापस ला दी ।"

"माँ, मैंने तो प्रयास किया था । यह तो मेरा फर्ज था । सब अपना फर्ज पूरा करते हैं । मैंने भी किया और फिर निशा तो मेरी क्लास फैलो रही है ।"

"हाँ, निशा ने भी बताया था । क्या पियोगे बेटे ?"

"जी कुछ नहीं, बस कुछ जरूरी बात करनी है । पहले जरा निशा से राय लेनी है एक मामले में ।"

"निशा से ! ठीक है, ले लो राय । मैं चाय बनाकर लाती हूँ ।"

"मैं कल नहीं सो सका । मेरा साथ दो । तुम्हें तो सब पता ही है ।"

"अच्छा ! तो नौबत यहाँ तक आ पहुँची । माँग लो न मेरे माता-पिता से मेरा हाथ !"

"इसीलिए तो तुम्हें पूछ रहा हूँ । मुझे अच्छी तरह पता है कि तुम भी यही चाहती हो । फिर भी, पूछना उचित समझा ।"

"अच्छा ! बाबा । मेरी राय कुछ नहीं है । जो तुम करो वही मेरी राय है ।"

"इसका मतलब - आंसर इन अफरमेटिव ।"

[6]

"निशा की शादी हुए चार महीने बीत गए और तुम्हें कुछ पता ही नहीं । कम से कम उसकी ख़बर तो लेते आओ ।"

"सावित्री, तुम क्या समझती हो कि मुझे उससे प्यार नहीं है ।"

मैं तो हर हफ्ते उससे बात कर लेता हूँ फोन पर । पूछ लेता हूँ उसकी कुशल-क्षेम । बिल्कुल ठीक है वह ।"

"अच्छा तो यह बात है । मुझे क्यों नहीं बताया पहले यह सब । मुझे क्यों दूर रखा ।"

"देखो सावित्री, दुनिया तो बस चलती ही रहती है । तुम जानती हो कि सावित्री बेटी के हम पर कितने अहसान हैं फिर वह हमारी अपनी औलाद ही तो है । उसका सुख हमारा सुख है । वह चैन से रहे, यही हमारी तमन्ना है । वह ठीक है, हम ठीक हैं । दुनिया चल रही है; हम चल रहे हैं; बस । चलती का नाम ही तो गाड़ी है ।

●●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अचला

- अशोक वर्मा 'साजन'

अकाश में तारे टिमटिमा रहे हैं। चाँद सोलहों कलाओं से अपनी चाँदनी बिखेर रहा है। चमेली की सुगंध लिए ठंडी पवन मंद -मंद कर बह रही है । चाँदनी मानो आकाश को चीरती हुई पृथ्वी पर अपना साया बिछा रही है।बहती नदी की कल-कल और झरने की झर-झर में मदोन्मत वातावरण में नमी छाई हुई है। आकाश अचला को अपने हृदय से लगाकर फूट-फूटकर रो रहा है। अचला का कंधा और पीठ आकाश के आँसुंओं से भीग गए हैं ।

आज सुबह जब पक्षी अपने घोसलों में सोए हुए थे। नदी शांत थी । मुर्गे ने अभी बाँग नहीं दी थी । सारा संसार सोया हुआ था । ब्रह्म मुहूर्त हो चुका था। अचला नहा-धोकर अपने केशों को अपने पतले-पतले, गोरे-गोरे हाथों से झटक रही थी । केशों से निकली हुई, चमकती हुई पानी की बूँदें आँगन में बिछी घास पर ओस की तरह बैठकर अपने आप में फूले नहीं समा रही थीं । इठला रही थीं । घने केशों में छिपा श्वेत इंदीवर -सा गोल चेहरा, पानीदार आँखें और नाक पर मणि के समान चमकता हुआ नथ आकाश मंडल को फीका सिद्ध कर रहा था। पौ फटी। पक्षी जागे । मुर्गे ने बाँग दी और सुबह हुई ।

मंदिर में पूजा करके अचला लौटी, तब तक मार्ग में काफी उजाला हो चुका था । घर पहुँची तब आकाश में सूर्यनारायण प्रकट हो चुके थे परन्तु अकाश सो रहा था ।

आकाश सुंदर और खूब पढ़ा-लिखा लड़का है । पिछले ही साल उसे ग्राम पंचायत में बाबू की नौकरी मिली है । पढ़ी-लिखी, अति सुंदर और संस्कारी पत्नी अचला के गृहप्रवेश करते ही आकाश को यह नौकरी मिली । अपने घर से कई प्रांतों के पार उसे यह नौकरी मिली है । अतः माँ-बाप से दूर रह रहा है । माँ-बाप की इकलौती संतान होने से खूब लाड़-प्यार में पला है परन्तु मित्रों की कुसंगति ने उसे अब नेक इंसान कहलाने लायक नहीं छोड़ा । ग्राम पंचायत में सभी मित्र इकट्ठे होकर जुआ खेलते और शराब पीते । आकाश भी इन मित्रों के साथ जुआ खेलने लग गया और खूब शराब पीने लग गया । मित्र उसे आए दिन जुए में पराजित करते लेकिन शराब पीने में वह जीत जाता । मित्रों की इस कुसंगति ने आकाश को बरबाद कर दिया; कंगाल कर दिया । तनख्वाह मिलते ही सारे पैसे लुट जाते । अचला आकाश की इस दशा को देखकर काफी दुःखी होती । आकाश को समझाने की कोशिश भी करती परन्तु उसे आकाश की बेरहमी से मार सहन करनी पड़ती ।

एक दिन तो आकाश ने अचला के सारे गहने चुराकर बेच दिए और जुए में सब-कुछ हार आया । अचला के पूछने पर जवाब के रूप में उसे आकाश ने बेरहमी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से पीटा और अपने अनाथ भाई से दहेज माँगकर लाने के लिए कहने लगा । अचला बोली, "मेरी जिंदगी में आपसे बढ़कर मेरा कोई भी नहीं है साजन ! मैं आपके अलावा किसके आगे हाथ फैलाऊँ?" अचला दुःखी होकर रोने लगी । आकाश उसे पीटता रहा । बिना माँ-बाप की अचला अपने ही 'सुख' के हाथों पिटती रही । अपना दुःख किससे कहे- सोचकर खून के आँसू पी गई ।

आज भी आकाश ने वही कहानी दुहराई । वह ग्राम पंचायत को जाने के लिए तैयार हुआ और अचला से शराब के लिए पैसे माँगने लगा । अचला के द्वारा पैसे न देने पर उसे बेल्ट से खूब पीटा । अचला के हाथों पर, पीठ पर बेल्ट की मार के नीले निशान पड़ गए । गालों पर थप्पड़ के सूजे हुए निशान हो गए ।

आकाश नाराज होकर दफ्तर चला गया । क्रोध के मारे आज उसने शराब भी नहीं पी । दिन-भर बेचैन रहा । शाम जब घर लौटा तो साँझ ढल चुकी थी । घर आकर उसने हाथ-मुँह धोए और कुढ़े मुँह अखबार पढ़ने लग गया । अचला उसके लिए खाने की थाली सजाकर लाई । आकाश ने गुस्से से अचला की ओर देखा। उसने देखा कि अचला के चेहरे पर सूजन आ गई है । थाली परोसती हुई अचला के हाथों पर उसकी नजर पड़ी । नाजुक पतले-पतले गोरे-गोरे हाथों पर बेल्ट की असह्य मार से नील पड़ गए हैं । पानी लेने अचला मुड़ी तो आकाश की नजर उसकी पीठ पर पड़े गहरे निशानों पर पड़ी । आकाश स्तब्ध रह गया । इतने में पड़ौसी रमाशंकर की बहू आई और उसने कहा - "अचला! चाँद निकल आया है । करवा चौथ का पूजन कर लो ।" यह सुनते ही आकाश के हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो गए । सोचने लगा-" आज मैंने अचला को कितना पीटा । कितना रुलाया । कितना सताया । उसने दिन भर कुछ खाया नहीं और केवल मेरे लिए, मेरी आयुष्य के लिए, मेरे सुख के लिए इसने यह करवा चौथ का व्रत किया ! मैंने बदले में उसे क्या दिया । मुझसे बड़ा पापी इस दुनिया में कोई नहीं है । मत्सम पातकी नास्ति । जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ ही सुख समृद्धि होती है । मैंने अचला का अपमान किया । उसकी पवित्र भावनाओं को रौंदा है । उसकी आत्मा को ठेस पहुँचाई है । आज मैं चाँद को साक्षी मानकर वचन लेता हूँ कि आज के बाद अचला को दुःखी नहीं करूँगा। कभी शराब नहीं पीऊँगा और न ही जुआ खेलूँगा । उसकी भावनाओं का आदर करूँगा ।"

अचला पूजन करके लौटी । अचला को देखते ही आकाश अपनी थाली ज्यों की त्यों छोड़कर खड़ा हो गया और अचला को अपने हृदय से लगा लिया । खूब फूट-फूटकर रोने लगा । अचला भी अपने पति के इस परिवर्तन पर खूब हर्ष के आँसुओं से रोने लगी । आकाश के आँसू टपकते रहे और वह अचला के आँसू पोंछता रहा ।

●●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य और उत्तरसंस्कृति

- डॉ. अमरसिंह वधान

यह कहने में संकोच नहीं कि मानवीय जीवन हमेशा से समस्या-संकुल रहा है और वैदिक, पौराणिक व सांस्कृतिक प्रसंगों के ब्योरे प्रमाणित करते हैं कि तत्कालीन समाज में भी संकट, सत्ताई टकराव, गठबंधन, गुटबाजी, शोषण, अत्याचार, अन्याय, नाबराबरी, भेदभाव, विषमता, छटपटाहट, राजनीति, अस्वीकृति, हठधर्मिता, वैयक्तिक महत्वाकांक्षा, मर्यादाहीनता, छल-कपट, उच्छृंखलता और बिखराव के क्षण भी गुजरे हैं। ज़ाहिर तौर पर दास युग में दास, सामंत युग में किसान बंधक मजदूर तथा पूँजीवाद समाज में उजवती मजदूरों की ज़िंदगी का अमानवीय धरातल बरकरार रहा है। खुले और छिपे रूपों में न केवल क्रूर अभियान चलते थे, बल्कि एक-दूसरे पर आरोप- प्रत्यारोप भी लगाए जाते थे। बगैर ज़रा-सा पूर्वाग्रही हुए एक बात स्पष्ट है कि प्रकृतिजन्य, सृजनोन्मुखी और कल्यणोन्मुखी वैदिक संस्कृति के विरूद्ध मर्यादारहित और संयमरहित असुर संस्कृति उभरी, जिसने मूल्यविहीनता, हिंसा प्रवृत्ति, अमानवतावाद और अपराधमूलक प्रवृत्तियों को ही बढ़ावा दिया ।

यह बात भी आश्चर्यचकित करती है कि प्रकृति के सृजन ने सहभागी मानव कल्याण के सशक्त पक्षधर, यश व अर्थ के लोभ से मुक्त, असीमित शक्तियों के स्वामी, स्वभाव से विनम्र एवं धैर्यवान वशिष्ठ के खिलाफ विश्वामित्र ने अकल्पनीय षड्यंत्र रचे और उसने अपनी समूची शक्ति वशिष्ठ को नीचा दिखाने, कामधेनु को हथियाने और ईर्ष्या भाव की पताका फहराने में नष्ट कर दी । बरब्रीक ने भी विनाश के लिए ही अपनी शक्तियाँ एकत्रित की थीं। नास्तिकता, घमंड और निर्दयता की प्रतीक हिरण्यकश्यप् संस्कृति भी रही है, जिसमें मर्यादाएँ टूटीं-बिखरीं, लोगों में त्राहि-त्राहि मची और मनचाही साजिशें रची गईं । द्रोणाचार्य संस्कृति का एक वह रूप-भी देखने को मिलता है, जो एकलव्य ने अनुभव किया था। यह समझने में भी कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि महाभारत और राम-रावण युद्धों में मूल्य-मर्यादाएँ कुम्हलाईं और विखंडित हुईं। इसके लिए भी कोई सबूत तलाशने की आवश्यकता नहीं मालूम पड़ती कि ऋषियों-मुनियों की राजनीति के चलते आत्मिक यज्ञ के अनुष्ठान कर्मकाण्ड के अनुष्ठान बन गए थे। वज़ह यह थी कि उस समय भी ऋषियों का अपना एक दल-बल होता था जो दूसरे ऋषि के अस्तित्व को नकारने के साथ-साथ अपनी वाणी ही मनवाने की आध्यात्मिक तानाशाही प्रदर्शित करते थे। यह बात अलग है कि इस कर्मकाण्ड के आखेट को कालान्तर में महात्मा बुद्ध ने एक मारक चुनौती दी थी। एड्म और ईव के सुखमय जीवन को तार-तार करने के लिए सैटन (शैतान) ने हर निंदात्मक एवं कुत्सित प्रयास किए। इसमें अस्वीकृति की क़तई गुंज़ाइश नहीं कि उपर्युक्त अवरोधक एवं प्रतिरोधक शक्तियाँ आधुनिक लाभवाद, यशवाद, अहिंसक हिंसा, अपसंस्कृति, अवसरवादी जोड़-तोड़, शिविरबद्धता, समूह का आतंक, पक्षपात प्रवृत्ति, जुगाड़ तकनीक और दीमक मनोवृत्ति का ही रूप थीं, सिवाय इस अपवाद के कि उस समय की सामाजिक व्यवस्था में लचीलापन और स्थिति के मुताबिक परिवर्तन की क्षमता मौजूद थी।

लेकिन सिक्के का दूसरा पहलू यह भी है कि भारतीय संस्कृति पाखंड प्रधान कभी नहीं रही है। इसमें भारतीयता का भाव सदैव रहा है तो एकात्मकता, जो इसका असाधारण गुण है, हमेशा हरी-भरी रही है। सभी में एक को देखना इसका मूल भाव है। भारतीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृति 'होने' की है और यह प्रेम करना सिखाती है। व्यक्ति-व्यक्ति में तात्त्विक रूप से भेद कहीं है ही नहीं। दरअसल, हम तब भटकने लगते हैं, जब यह सोचने लगते हैं कि विदेशी संस्कृति की छाया में हम भूल जाते हैं कि सत्य अनुभूतिजन्य है और इसके लिए गहरा गोता लगाना पड़ता है। अस्मिता का संबंध अंतर्मन और अंतरअनुभूति से है। फिर भाषा और साहित्य भी तो संस्कृति के अंग हैं। इनमें एक चैतन्य प्रवाह बना रहता है। लेकिन तुष्टिवाद का प्रवेश भाषा और साहित्य के लिए ही नहीं, अपितु जीवन मूल्यों के लिए भी घातक सिद्ध हो रहा है। लगता है कि सांस्कृतिक दृष्टि, मानसिक दृष्टि, हार्दिक दृष्टि और पारिवारिक दृष्टि से आज हम जितने गुलाम हैं, उतने पहले कभी नहीं थे।

स्वीकार तो यह भी करना होगा कि इधर मानव समाज को एक नया खतरा लीले जा रहा है और वह है शहरी संस्कृतिवाद का खतरा। हैरत इसमें भी नहीं कि भारतीय दर्शन एवं संस्कृति का विकास बनों में, कन्दराओं में, नदियों और झरनों के किनारों पर हुआ। इस दर्शन के आधार पर जिस जीवन पद्धति और संस्कृति का विकास हुआ, वह ग्रामीण समाज और कृषि को आधार बनाकर फली-फूली। ऐसा नहीं है कि इस संस्कृति में शहरों का विकास नहीं हुआ। लेकिन वे शहर गाँवों में फूलती-फैलती संस्कृति की बाहरी सीमाएँ मात्र थे। इस अर्थ में वे उस संस्कृति के केन्द्र और विधायक कदापि नहीं थे। कारण यह कि इस संस्कृति में संयम के साथ बढ़ने का विधान स्वीकार किया गया। इसमें भोग और त्याग, अन्तर और बाह्य, व्यष्टि और समष्टि के बीच एक ऐसा संबंध कायम किया गया, जो एक-दूसरे को संतुलित करता था।

लेकिन इसके ठीक विपरीत पाश्चात्य संस्कृति का विकास शहरों में हुआ। इस विचित्र संस्कृति में एक को बचाने के लिए दूसरे का नाश अनिवार्य मान लिया गया। नतीजे के तौर पर विनाशों के विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास हुआ। जिस क्षेत्र में यह संस्कृति पनपी और उसी क्षेत्र में उसके लिए पैर पसारने का जब ठौर न रहा, तब उसने आखेट के नए-नए क्षेत्र खोजे। इसी खोज के दौरान पाश्चात्य संस्कृति भारतीय प्राच्य संस्कृति के संपर्क में आई। उसका फैलाव न केवल पूर्व की ओर ही हुआ, बल्कि वह सभी दिशाओं में भागी। अधिसंख्य संस्कृतियाँ उसकी चपेट में आईं और नष्ट हो गईं। एशिया की संपन्न संस्कृति को भी उसने रौंदा। लेकिन इस विनाश लीला में वह पूरी तरह सफल नहीं हुई। उल्लेखनीय है कि आज पश्चिमी संस्कृति अपने विकास के जिस दौर में पहुँच गई है, उसमें उसका अन्तर्द्वन्द्व बहुत उग्र हो गया है। पाश्चात्य दर्शन और जीवन पद्धति उन सवालों का जवाब दे सकने में असमर्थ है, जो उसके अन्तर्द्वन्द्व के दौरान उभरे। ताज्जुब तो इस बात का है कि व्यक्ति और समाज को शीलता तथा संतोष प्रदान करने के बजाय यह संस्कृति अशांति और असंतोष की ऐसी आग जलाती जा रही है, जिसमें जलकर भस्म हो जाने के भय में व्यक्ति भयभीत है। आत्मविनाश की जो विशाल शहरी शत मंजिली प्रयोगशालाएँ उसने खड़ी कर दी हैं, वे उन सभी संस्कृतियों को नष्ट कर देना चाहती हैं, जो इस ग्रह के विभिन्न कोनों में अपने-अपने ढंग से फूलती-फलती रहना चाहती हैं। इसमें भी कोई संदेह नहीं कि स्वयं अमेरिकी समाज इस समय के बड़े द्वन्द्व का शिकार है। विश्व समाजों में स्वतंत्रता की दृष्टि से किए गए ताजा सर्वेक्षणों से पता भी चलता है कि सबसे अधिक सामाजिक स्वतंत्रता अमेरिका में ही है।

लेकिन यह तथ्य भी धूप की तरह स्पष्ट है कि पाश्चात्य संस्कृति में समाज का प्रत्येक क्षेत्र में समूहीकरण हो जाने से व्यक्ति विद्रोही हो चला है। समाज व्यक्ति को अपने सहज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और स्वाभाविक रूप में विकसित होने का अवसर प्रदान नहीं करता। राजनीति और व्यवस्था की विवशता यह है कि वह व्यक्ति को सत्ता की नींव के पत्थर से अधिक और कोई महत्त्व नहीं देती। तभी तो एक जर्मन लेखक पुकार उठता है- "मेरी यह कामना रही है कि मैं जेब में पिस्तौल रखकर अपने साहित्य की रचना करूँ।" लेकिन समाज की नींव के ये पत्थर छिटक-छिटककर दूर पड़ते जा रहे हैं और समूचा समाज ढह रहा है। शहरी औद्योगिक संस्कृति संपूर्ण विश्व को अपने कूड़े-कचरे से अलग पाटे दे रही है। यहाँ तक कि एक स्वतंत्र और स्वावलंबी पारिवारिक इकाई किसी बहुमंजिली इमारत में दफ्न होती जा रही है। लेकिन् यह भी सच है कि पाश्चात्य संस्कृति के अनुयायी अब यह स्वीकार कर रहे हैं कि असीम आर्थिक और भौतिक विकास एक थोथी कल्पना है। इस मोह को त्यागकर संयम और संतुलन पर वे विचार भी करने लगे हैं। इसीलिए अमेरिका और रूस आज भारत की ओर देखते हैं। भारतीय कला और संस्कृति का प्रभाव तो उन पर है ही। इसमें भी दो राय नहीं कि अमेरिका का विज्ञान वहाँ पर हमारे देश के वैज्ञानिकों के कहने से चलता है।

एक अन्य कोण से देखा जाए तो उपभोक्तावादी संस्कृति, उत्तरआधुनिकता और उत्तरसंस्कृति ने हमारे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन को ही नहीं, अपितु हमारी भाषा और हमारे साहित्य को भी गहरे में प्रभावित किया है। साहित्य में निंदात्मक उपक्रम, यशेषणा, धनेषणा, अपराधीकरण, कथनी और करनी में अंतर, पैशाचिकता, प्रदूषण, पक्षपात, शक्ति-शिविरता, भावनाओं का निरादर, वैचारिक त्रासदी, नेस्तनाबूद होते आदर्श, पक्षपात, बौद्धिक आतंक, अवसरवादिता, गाढ़े मौकों को भुनाना, फरेबी नाटक, व्यावसायिकता, अराजकता आदि की अतिरेकी बौछार तकरीबन दो दशकों से बनी हुई है। यहाँ कहना सिर्फ इतना है कि व्यक्ति की संवेदनाओं को चबाकर ये कतरनाक चीजें साहित्य का संचालन स्वंयं करने लगी हैं। अमेरिका के विश्वविद्यालयों के कुछेक प्रोफेसरों और विशेष रूप से बोर्खेज ने इतना ही कहा था- "हमारी मसीही परंपरा काफिर है। हमें यूरोप की मसीही परंपरा अमान्य है। हमारी परंपरा तो बेलेड्स में है और पुराने में है। कोई चीज. नई नहीं होती है।" लेकिन इस लघु कथन में पृथ्वी की-सी अर्थ विपुलता समायी हुई थी। इस संदर्भ में प्रश्न की वेदना यह है कि क्या इस उत्तरआधुनिकता की अवधारणा ने मानव स्वत्व तथा कर्ता की मृत्यु की घोषणा नहीं की और क्या यथार्थ को अनुकृति, मिथ्या, छलावा, माया, परछाई अथवा मात्र चिह्न कह कर नकार नहीं दिया ? इस संवेदनशील परिप्रेक्ष्य में इक्कीसवीं सदी की दहलीज पर खड़े मनुष्य का कुछ दुविधा, कुछ संशय और कुछ अनास्था की स्थिति में कार्यप्रणाली की आवश्यकता है, वह उसका सबूत नहीं दे पा रहा है । इस मीडिया, कंप्यूटर, प्रौद्योगिकी तथा समाज में प्रकट होने वाली घटनाएँ, मानवीय चिंतन, संवेदना तथा क्रियाकलापों को त्वरित गति से प्रभावित कर रही हैं। यही वज़ह है कि मनुष्य को जिस बुद्धि-बोध तथा विचलित होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है । इसी से जुड़ा अन्य कारण यह सिलसिले में मिशल फूको तो यहाँ तक कह देता है कि जिन लोगों को हाशिए पर धकेल दिया जाता है, उन्हें नस्ल, लिंग, वर्ग तथा रंग के कारण दमन का निशाना बनाया जाता है। कहना न होगा कि उत्तरआधुनिकता का साहित्यिक प्रवचन सांस्कृतिक अध्ययनों के अंतर्गत इन्हीं विभेदों पर आधारित है । फिर, एकदम साफ है कि यदि भविष्य का समाज 'उत्तरमानव' होगा तो निस्संदेह भविष्य का साहित्य 'उत्तरसाहित्यकार' होगा।

लेकिन उत्तरसंस्कृति तो इससे भी कई कदम आगे बढ़ जाती है। मिसाल के तौर पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाजारवाद, वैभव की लालसा, विस्थापन, साहित्यिक प्रदूषण एवं नशावाद, आश्रय व प्रशस्ति लोलुपता, प्रदर्शन चाह, प्रतिभा पलायन, परिवेश और धरातल में बदलाव, राजनीतिक विवाद, संस्कृतियों का संघर्ष, भाषाई अराजकता और अश्लीलता, मूल्यों का विघटन, हिंसा प्रवृत्ति, आचार-व्यवहार में कृत्रिमता, वैश्वीकरण, त्वरित प्रकाशन व स्थापना, सत्ता का प्रभुत्व, सर्वनाश का आतंक, राजनीतिक अधिनायकवाद, आर्थिक एकाधिकार, यांत्रिक सभ्यता, नियति, तुच्छ व्यवस्था, सामाजिक विषमता, चौंका देने वाली हरकतें, भ्रष्टाचार, शोषण, अयोग्य नौकरशाही, परोत्पीड़न, स्वेच्छाचार, अमानवीयता, अन्याय, हथकंडे, झूठ-प्रपंच, ज़बर्दस्ती, मिथ्याचार, घृणा, विक्षोभ, आधी अपराध स्वीकृति और आधी धमकी, पाशविक मनोवृत्तियों का अस्त-व्यस्त उभार, क्षोभ और बदले की भावना, निरंतर झूठ से निराशा, चरम उदासीनता, निम्न प्रवृत्तियाँ, नकाव ओढ़न, भयावह वास्तविकताएँ, पूँजीवाद का समुत्कर्ष, निर्लज्जता, स्वार्थ-सिद्धि, भौतिक उन्नति की अंधी दौड़, साधन-वृद्धि, विकास-दर, विषमता की पराकाष्ठा, अन्तर्विरोध, आदि कुप्रवृत्तियों का रस निचुड़कर मानो उत्तरसंस्कृति के प्याले में इकट्ठा हो गया हो। इस संदर्भ में यह कोई अविश्वसनीय बात भी नहीं है कि हमारा लोकजीवन, सांस्कृतिक जीवन और साहित्यिक जीवन उत्तरसंस्कृति से ग्रस्त है और साहित्यिक, सांस्कृतिक और मानवीय मूल्य विदेशी प्रतिबद्धता से घिरे हुए हैं ।

विश्व साहित्य की खुली खिड़कियाँ इस बात की साक्षी हैं कि समय-समय पर साहित्यकारों और लेखकों को तिरस्कार, उपेक्षित भाव, घृणा व साहित्यिक राजनीति का शिकार होना पड़ा है। सत्ताई छाया ने रचनाकारों की सम्पूर्ण तस्वीर को ढके रखा तो विरोधियों और मंदअक्लों ने उन्हें चर्चित व प्रतिष्ठित न होने देने में बौद्धिक षड्यंत्रों की शृंखला जारी रखी। साहित्यकारों ने सामाजिक और राजनीतिक मुखौटों को उतार फेंक उनके असली चेहरों को दिखाने का जब भी प्रयास किया, सत्ताधीशों ने उन पर कठोर प्रहार ही किए। भारतीय साहित्य परिदृश्य की बात ही छेड़ दी जाए तो कालिदास, भवभूति, कबीर, तुलसी और रवीन्द्रनाथ टैगोर ऐसे प्रकाश-स्तंभ हैं, जिन्हें तत्कालीन विरोधियों, साहित्य के सौदागरों और सत्ता प्रमुखों का विरोध तथा तिरस्कार झेलना पड़ा था। निराला भी साहित्यिक एवं पत्रकारिता की राजनीति से बच नहीं पाए थे। 'सरस्वती' के संपादकीय कार्यालय ने हर बार उन्हें निराश ही किया। तत्कालीन गुटबंदी ने उन्हें अपमानित किया और कई अवसरवादियों ने उनकी कलम को अपने पक्ष में भी करने के असफल प्रयास किए। कई बेरहमी समाजार्थिक संदर्भों एवं अन्यायों ने निराला की प्रयोजनशीलता और रचनाधर्मिता का पदार्थीकरण करना चाहा। अनेक राजनीतिक व्यापारियों ने उन्हें कई प्रलोभन दिए, लेकिन उन्होंने अपना निजत्व और स्वाभिमान नहीं खोने दिया। कारण यह कि उन्हें किसी सरकारी कुर्सी का मोह नहीं था। उन्होंने न तो मैथिलीशरण गुप्त की तरह सरकार के बजट की प्रशंसा में चारणों की भाँति संसद के भीतर कविता पढ़ी, न ही हरिवंशराय बच्चन और रामधारी सिंह दिनकर की तरह राष्ट्र प्रमुख की निकटता पाने को लालायित हुए और न ही अज्ञेय की तरह किसी प्रधानमंत्री के 'अभिनंदन ग्रंथ' का संपादन करके बदले में अपनी कविताओं की भूमिका लिखवाने के लिए आतुर हुए। निराला को सुविदित था कि स्वाभिमान की हत्या करके, सरकारी उपाधियाँ पाकर एवं सरकारी नीतियों से सहमत होकर कोई रचनाकार वाहवाही तो लूट सकता है, लेकिन साहित्यिक व सामाजिक सरकारों के प्रति न्याय नहीं कर सकता है। दलालवाद के प्रभावाधीन इतराते इधर के रचनाकारों के लिए निराला एक पारदर्शी आदर्श है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौरतलब है कि एक लंबे समय से देवेन्द्र सत्यार्थी को देश के अनेक कीर्ति पुरुषों के सान्निध्य में निःस्वार्थ भाव से रहने का अवसर मिला है। एक बार पंडित जवाहर लाल नेहरू ने सत्यार्थी के लोकगीत की इन पंक्तियों "रब्ब मोया देवते भज गए, राज फिरंगियाँ दा" को सुनकर महात्मा गाँधी से कहा था- "मेरे और आपके सारे भाषण एक पलड़े में और सत्यार्थी के लोकगीत की ये पंक्तियाँ दूसरे पलड़े में रखें, तो भी सत्यार्थी हमसे भारी पड़ता है। देवेन्द्र सत्यार्थी ने देश के लोकगीत जमा करने में अपनी सारी उम्र खपा दी लेकिन हिन्दी जगत तो जैसे इनसे अनजान ही है। 'गीतांजलि' पढ़ने पर सत्यार्थी को ख्याल आया था कि यदि गीतांजलि पर नोबेल पुरस्कार मिल सकता है तो लोक में प्रचलित एक से बढ़कर एक लोकगीतों पर क्यों नहीं ? खुशवंत सिंह ने एक बयान में कहा था कि कई भाषाओं के बीच साहित्यिक पुल का काम करने वाले देवेन्द्र सत्यार्थी को ज्ञानपीठ तथा सरस्वती पुरस्कार क्यों नहीं मिले, जबकि वे इनके हकदार थे। 'आजकाल' पत्रिका के संदर्भ में देवेन्द्र सत्यार्थी पत्रकारिता राजनीति के शिकार हुए तो साहित्य-क्षेत्र में साहित्यिक राजनीति ने उन्हें दबाकर ही रखा। कमल किशोर गोयनका को धूमिल करने में चरित्र हनन विशेषज्ञों ने कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी। अमृता प्रीतम ने जितना लिखा है, उसके विषय में जो अपसंस्कृति रंगी आलोचना सामने आई है, उसमें गलत स्थापनाएँ अधिक हैं। यह कैसा ईर्ष्यालु और शतरंजी गणित है कि नादान आलोचकों ने जान-बूझकर अमृता की रचनाओं को मोहन सिंह की कविता के स्थापित बिंब या मिथ के दायरे में ही बाँधकर रख दिया। यह वाजिब इसलिए नहीं है, क्योंकि मोहन सिंह मूल तौर पर अंग्रेजी और उर्दू-फारसी की रोमानी कविता के प्रसिद्ध कवि थे जबकि अमृता प्रीतम उस समय भी इस परंपरा की कोई चर्चित कवयित्री नहीं थी। उनकी कविता का संबंध तो परंपरा से संपूर्ण विद्रोह एवं आधुनिकता के साथ है। इसीलिए उनकी कविता लोकनायक चेतना के बिंब से स्त्री चेतना में प्रवेश करती है। कहने का प्रयोजन यह है कि अमृता प्रीतम भी साहित्यिक राजनीति एवं आलोचकों की साजिश से बच नहीं पाईं। उन्हें प्राप्त हुए ज्ञानपीठ पुरस्कार की अलग रहस्यमयता है।

विदेशी रचनाकारों को भी उनके यहाँ की व्यवस्था, साहित्यिक यातना, तानाशाही और मानसिक यंत्रणा गहराई में सालती रही हैं। अंग्रेजी गद्य के जनक फ्रांसिस बेकन को एलेग्जेंडर पोप ने मानवता का निकृष्ट व्यक्ति कहा तो नाटक आलोचकों की धड़ेबंदी ने विलियम शेक्सपियर की मौलिकता पर यक्ष प्रश्नचिह्न लगाते हुए यह तथ्य तक दाग दिया कि ये नाटक किसी अन्य व्यक्ति द्वारा लिखे गए है। जबकि यूनिवर्सिटी विट्स और क्रिस्टोफर मार्लो जैसे नाटककारों को शेक्सपियर के एक साहित्यकार के रूप में अस्तित्व और उनके नाम प्रमाणन की पूरी जानकारी थी। जब लेडी वुडहाउस ने अपने एक लंबे आलोचनात्मक लेख में शेक्सपियर को 37 नाटकों, 154 सॉनेटों तथा दो लंबी कविताओं का मूल रचनाकार बताया तो तत्कालीन सिरफिरे और कायर टिप्पणीकार हतप्रभ रह गए। जॉन कीट्स की जान उसके आलोचकों ने ली, क्योंकि वह अपनी कविता की आलोचना बर्दास्त नहीं कर सका था। अत्यंत भावुक होने के कारण वह तत्कालीन आलोचकों के मैले इरादों और गंदी राजीनीति को समझ नहीं पाया था। यहाँ तक कि उसने तंग आकर 'ओड टू ए नाईटिंगेल' कविता में अपनी 'शांत मृत्यु' की घोषणा कर दी थी, भले ही उनके यौवन अवसान के पीछे उनकी प्रेमिका फैनी ब्राऊन की बेवफाई तथा वंशागत क्षयरोग का सदमा भी था। मैथ्यू आरनोल्ड को उसके समय में ही एक कवि और आलोचक के रूप में साहित्यिक दादागीरी ने स्थापित नहीं होने दिया और उनकी रचनाओं के प्रति नकारात्मक एवं अमान्यात्मक स्वर ही उभरता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा। आगे चलकर टी. एस. इलियट ने अवश्य आरनॉल्ड के आलोचना-सिद्धान्तों को कसौटी पर कसते हुए उन्हें स्थापित एवं प्रतिष्ठित किया।

एंटन चेखव ने तो अपने समृद्ध अनुभव से आलोचकों की टुच्ची राजनीति एवं कमीनी हरकतों को सहजता से लेते हुए अपने एक मित्र साहित्यकार से कह ही दिया था- ''घोड़े की पीठ पर चाबुक की मार से बने घावों पर मक्खियों के प्रहार का कोई असर नहीं होता।'' जबकि षड्यंत्र, मक्कारी, कूटनीति और विश्वासघात चेखव के साथ सदैव आँखमिचौनी खेलते रहे थे। कौन नहीं जानता कि मिखाइल बुल्गा को सोवियत सत्ता ने भूखों मरने छोड़ दिया था। निर्दयता एवं प्रतिबंध की यह हद कि वह न लिख सकता था, न छप सकता था, न उपार्जन का कोई उपाय उसके पास था और न ही उसे देश छोड़ने की अनुमति थी। चाहते हुए भी स्वयं मैक्सिम गोर्की उसके लिए कुछ नहीं कर सका था, क्योंकि उस समय सर्वोत्कृष्ट व्यवस्था की तानाशाही थी और गोर्की सोवियत समाजवाद के कर्णधारों के प्रिय नहीं बन सके थे। फिर गोर्की भी तो बोल्शेविक सत्ता की दर्दनाक ज्यादतियों एवं बेइंसाफियों से बच नहीं पाया था। साइबेरियाई लेखक संघ ने तो गोर्की को नकाब ओढ़ा हुआ दुश्मन तक कह दिया था। राजनीतिक हस्तक्षेप के कारण ही गोर्की को रूसी विज्ञान अकादमी की सदस्यता से हटना पड़ा था। दिलचस्प है कि लेनिन की पत्नी क्रुप्सकाया और स्पेरान्सकी ने एक गाईड बुक प्रकाशित करके निर्देश दे दिया था कि सोवियत संघ के पुस्तकालयों से प्लेटों, कांट, टॉल्सटॉय और दॉस्ताएवस्की की कृतियों को हटा दिया जाए, क्योंकि ये तमाम रचनाएँ प्रतिक्रांतिकारी साहित्य हैं । इतना ही नहीं, अन्य देशों के सत्ताधिकारियों ने प्रतिभा सम्पन्न महिला साहित्यकारों को भी नहीं बख्शा । यूनानी लेखिका शैफे को देश छोड़कर सिसली में रहना पड़ा और जीवन भर वह अपनी कोई भी रचना प्रकाशित न करवा सकी। वर्जिनिया वुल्फ को आत्मघात करना पड़ा तो पोलेंड की कवयित्री कादियां को जलावतन कर दिया गया। स्वीडन की शायरा कारिन बोयो को आत्महत्या करने के लिए मजबूर होना पड़ा। बांग्लादेश की तसलीमा नसरीन कट्टरपंथियों की निगाहों के पहरे से बच नहीं सकी। कश्मीर की लल्लेश्वरी एवं हब्बा खातून को जंगलों में शरण लेनी पड़ी।

इसमें कोई शक नहीं कि लेखक मनुष्य की आत्मा का इंजीनियर है। वह निःस्वार्थ भाव से समाज के प्रति अपना दायित्व निभाता है। समाज के दर्द को पीता हुआ वह समाज को नई दिशा एवं नए आयाम देने वाली रचनाएँ गढ़ता है लेकिन उसकी साहित्य साधना को न तो अपेक्षित मान्यता मिल पाती है और न ही वह उत्तरसंस्कृति के हस्तक्षेपों की वजह से प्रतिष्ठा प्राप्त कर पाता है। वाणी में विनम्रता और हाथ में लाठी रखे साहित्यधीशों ने लेखकों का जमकर शोषण किया। नतीज़े के तौर पर विश्व साहित्य के इतिहास की दरी के नीचे कई नाम सरक गए। यूँ तो अंग्रेजों ने भी राजनीतिक तथा सांस्कृतिक साम्राज्य के विस्तार की प्यास खूब बुझाई । लेकिन वे अपने आतंकमय प्रवास से भारत के अस्तित्व की बुनियादी शर्तों में कोई परिवर्तन नहीं कर सके। शायद इसीलिए रुडयार्ड किपलिंग को कहना पड़ा था- ''ईष्ट एण्ड वैस्ट. द ट्वेन शैल नेवन मीट।'' यद्यपि राजा राव ने भारतीय परंपरा और संस्कृति को पाश्चात्य संस्कृति से जोड़ने का प्रयास अपने उपन्यासों में किया, लेकिन उनके पात्र प्रायः अंग्रेजी शिक्षा में पगे हुए पश्चिमी जीवन में जड़ें रखने वाले ही स्त्री-पुरुष होते हैं। सभी चरित्र अस्तित्व की यंत्रणा से पीड़ित हैं और उन्हें लगता है कि वे अपनी जड़ें खो चुके हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उल्लेखनीय है कि जब भी किसी परंपरा या संस्कृति पर विदेशी और अजनबी विचार थोपे जाते हैं तो रचनाशक्ति आत्मसंहार और आत्मविरोध में परिणत हो जाती है। इस संदर्भ में आधुनिक भारतीय लेखक, अपवाद के तौर पर कुछेक को छोड़कर, की विफलता यह है कि वह भीतर नहीं, बाहर स्थित होता है। वह उधार के विचारों से भारतीय मानस को रंग-बिरंगा बनाता है। यही वजह है कि अज्ञेय के उपन्यासों में स्त्री-पुरुषों का अस्तित्व एवं उनकी पीड़ा दोनों काल्पनिक हैं। वहाँ लगाव जैसी चीज नहीं मिलेगी। हाँ, रवीन्द्रनाथ टैगोर की जड़ें बहुत हद तक भारतीय परंपरा और संस्कृति के गौरव तथा उनकी संपूर्णता में थीं। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं कि ई.एम. फोस्टर का उपन्यास 'ए पैसेज टू इंडिया' आज भी भारतीय समाज की सबसे प्रामाणिक व्याख्या है। दरअसल, फॉस्टर ने भारत को उसकी समग्रता में समझने का प्रयत्न किया था। इस बात से सहमत हुआ जा सकता है कि साहित्य में पहले विचारधाराओं का स्थान था। लेकिन अब सर्वत्र उत्तरसंस्कृति के कुमूल्य हावी हैं। तभी तो आधुनिक लेखक भवनों और संस्थाओं का शोभा पुरुष बनने के प्रति अधिक सजग है। जार्ज लूकाच ने एक बार एक भारतीय लेखक से सवाल किया था कि इतने तनावों और संघर्षों के बावजूद भारत कोई दोस्तोएवस्की क्यों नहीं पैदा कर सका? शायद उनके कहने का प्रयोजन यह रहा होगा कि किराए का लेखक बनकर भारत को उसकी समग्रता में देखा, परखा और समझा नहीं जा सकता है।

लेकिन जो बात सबसे तकलीफदेह है वह यह कि समाज में जो भी निर्णय होते हैं, उसमें लेखक का कोई स्थान नहीं है। ये निर्णय उन लोगों द्वारा लिए जाते हैं, जो सृजनात्मक शक्ति पर सत्ता शक्ति का प्रभुत्व स्थापित करने के लिए किसी भी दमन, अस्त्र और नीति का प्रयोग करने में संकोच नहीं करते। मान लो किसी देश या समाज में ऐसी परिस्थिति आ जाए कि लेखक के लिए मोर्चे पर जाना अनिवार्य हो जाए और उसे मानवतावादी शक्ति से मोर्चा लेना पड़े तो ऐसी विकट स्थिति में साहित्य-सृजन निश्चित रूप से पहले दर्जे का कार्य ही होगा। अंग्रेजी साहित्य के इतिहास में काव्यकारों का एक ऐसा वर्ग सुरक्षित एवं मान्यता प्राप्त है, जिसे 'ट्रेन्च पोइट्स' के नाम से जाना जाता है। ये वे कविगण थे जो दूसरे महायुद्ध के समय खंदकों में युद्धरत की स्थिति में कविताएँ लिखा करते थे। ये कवि ख्याति अथवा किसी भी प्रकार के प्रलोभन के पीछे नहीं गए, क्योंकि वे अपनी दृष्टि और अपने विवेक में आस्था रखते थे।

वैसे रचनाकार के दायित्व को परिभाषित करना मुश्किल है। फिर भी, जिस दुनिया में लोग जाने का साहस नहीं करते, उस दुनिया से साक्षात्कार करवाना रचनाकार का दायित्व तो है ही। यह मर्म समझा जा सकता है कि रचनाकार केवल सर्जक ही नहीं होता, बल्कि उसके अंदर कोई आलोचक भी बैठा रहता है। तभी तो वह रचना को बार-बार काटता-छाँटता रहता है। उसमें जो अन्तर्दृष्टि होती है, वही रचना के रचाव की दृष्टि होती है। वह रचना की प्रक्रिया से लड़कर रचना को शरीर देता है। परन्तु यह भी कैसा सुदूरतम आश्चर्य है कि साहित्यिक आलोचना के दायरे में अरस्तू को नकारने या स्वीकारने के जो अलग-अलग हादसे हुए, उसे नकारा नहीं जा सका। कदाचित इसलिए कि अरस्तू का सत्य उसके बाद के हर रचनाकार या समीक्षक के सत्य से बड़ा रहा होगा। इसी प्रकार कार्ल मार्क्स के सत्य एवं आत्मबोध को मारने के जितने षड्यंत्र रचे गए, वह उतना ही फैला । बकुनिन जैसा कठोर दर्शन शास्त्री व्यवस्था को समझ पाने के पहले ही हीगल के वैचारिक आक्रमण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से आच्छादित था। नीत्शे ने जिस प्रकार के विचार को जन्म दिया, वह आज तक भी निरस्त नहीं किया जा सका है। सोल्जेनित्शिन ने 1967 में सोवियत लेखकों के नाम लिखे गए एक पत्र में कहा था- ''वह साहित्य जो अपने समकालीन समाज की श्वास न हो, जो समाज के दर्द और डर को एक-दूसरे में उतार न सके, जो नैतिकता के खतरों के खिलाफ समय पर चेतावनी न दे सके, ऐसा साहित्य मात्र ऊपरी दिखावा है और वह साहित्य होने का दावा नहीं कर सकता।'' उत्तरसंस्कृति की होली खेलने वाले इधर के लेखकों के लिए यह कितनी प्रासंगिक एवं यथार्थ सीख है।

साहित्य पर भी तो इस बात का दबाव बार-बार डाला जाता है कि वह समाज में अपनी उपयोगिता सिद्ध करे, जबकि साहित्य उन दीक्षाओं में से नहीं है जो समाज को सीधे संबोधित करती हैं। असल में, साहित्य का पहला स्फुरण समाज में चलते परिवर्तनों को लक्ष्य करके होता हैं। जब सारा मानव समाज किसी आसन्न संकट के रू-ब-रू होता है तो साहित्य जगत में सालों तक एक तूफान-सा आया रहता है और साहित्य के अवचेतन में भविष्य के अंधेरे में हाथ बढ़ाने की बेचैनी तड़फड़ाने लगती है। इस तड़फड़ाहट और शोर से मानव-समाज में तत्परता का एक प्रतिरोधक बल पैदा होता है। मत भूलिए कि छोटी से छोटी रचना भी मानवीय चरित्रों और वृत्तियों को छानते-छानते एक प्रमाणिक और मार्मिक अनुभूति का ऐतिहासिक दस्तावेज बन सकने में समर्थ हो सकती है। आगे चलकर रचना की यही विशिष्टता बड़े से बड़े परिवर्तनों की वाहक बनती हैं। लेकिन निजी स्वार्थों के लिए साहित्यकारों का समय की राजनीति में खप जाना और कुसंस्कृति में रंगे जाना साहित्य की मूल्यवान जागरूकता की दृष्टि से हितकर नहीं है।

यह भी देखा गया है कि रचनाकार घटनाओं में नहीं, घटनाओं के प्रभाव में उतरता है। कर्म को नहीं, कर्म के विवेक को खोलना चाहता है। कार्य नहीं, कारण की पड़ताल जरूरी समझता है। यही वजह है कि उसकी रचना समाज में छिपी मनुष्यता के तत्त्वों के सजातीय उद्वेग के कारण बनती है और अविस्मरणीय भी होती है। यहाँ स्पष्ट कर देना जरूरी है कि साहित्य कोई वस्तु नहीं, स्वायत्त आत्मा है और समाज के नैतिक सत्य की चिंता है। उसकी सृष्टि करने वाला भी ठीक से यह नहीं बता सकता कि उसके रचे संसार की गूँज कब और कहाँ तक जाएगी। उसमें जागने वाला सत्य कितने और कैसे आस्वादों की रचना करेगा। यदि समाज की यह माँग है कि साहित्य किसी बेहतर संसार की परिकल्पना दे तो उन गुटबाजी के अंधेरों एवं राजनीतिक संश्लिष्टताओं-जटिलताओं की विस्फोटक शक्ति को क्षीण करना होगा जिनके विरुद्ध साहित्य को कई स्तरों पर उलझना और जूझना पड़ता है।

साहित्य का एक शाश्वत तत्त्व है-सामासिक एकता। अगर मानव जाति को कभी एकात्मक होना हो तो उसके लिए राजनीति से साहित्य कहीं अधिक विश्वनीय आधार सिद्ध होगा। साहित्य की मूल संवेदना प्रायः सब जगह एक है। मनुष्य का सुख-दुःख, विरह-मिलन, व्यथा-वेदना, आशा-आकांक्षा और संघर्ष-सहयोग नाना रूपों में भले ही अभिव्यक्त होते हैं, पर उनका मर्म एक ही है। अनेक ऐतिहासिक और भौगोलिक कारणों से स्थितियाँ और दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न हो सकते हैं और होते हैं, लेकिन लक्ष्य उनका मनुष्य ही है। तभी तो पंचतंत्र की कहानियाँ विश्व भर में लोकप्रिय होकर उनकी अपनी हो गईं। जर्मन कवि गेटे अभिज्ञान शाकुन्तलम् को सिर पर रखकर नाच उठा था। शेक्सपियर और रवीन्द्रनाथ टैगोर की विश्व यात्रा बहुत पुरानी नहीं है। डिकन्स और शरत कितने समान हैं। टॉमस हार्डी को 'टेस' क्या नारीवाद की वेदना को नहीं जी रही? टॉलस्टॉय को पढ़कर लगता है कि उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत की भूमि से उखाड़कर रूस की धरती में रोपा गया हो। साहित्य में जो अंतर होता भी है, वह जीवन पद्धति के बाहरी आवरण का होता है, मूल संवेदना का नहीं। टॉलस्टॉय, चेखव, गोर्की, मोपासा, आदि साहित्यकार हमारे आदर्श इसलिए बने थे, क्योंकि उनकी अनुभूति, हमारी अनुभूति और जीवन दृष्टि से भिन्न नहीं थी। लेकिन फ्रायड, कामू, काफ्का और सार्त्र को हमने अनुभूति के स्तर पर नहीं उतारा। इसलिए हमारे साहित्य में संत्रास का स्वर घोष मात्र ओढ़न का परिणाम है। स्पष्ट है कि आयातित अनास्था और मूल्यहीनता हमारी सृजनात्मक भूमि को रास नहीं आती। जो प्रभाव हमारी मानसिकता में रचपच नहीं सकते, वे एकरूपता नहीं ला सकते।

प्रेम, क्रोध, भय, करुणा, दया, ममता, घृणा, जुगुप्सा आदि भाव अभिव्यक्ति के रूप में साहित्य को अपनाते हैं। इसलिए यदि यूरोप के वर्जिल, होमर, दांते. मिल्टन आदि युद्ध और प्रेम के प्रसंग में अपनी रचनाओं में जिन भावों की अभिव्यक्ति करते हैं, भारत के वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति, कबीर, तुलसी, सूर आदि भी उन्हीं भावों की अभिव्यक्ति अपनी भाषा में करते हैं। इस प्रकार भिन्न-भिन्न कालों में रचा गया साहित्य एक ऐसे सामाजिक साहित्य का रूप धारण कर लेता है, जिसमें अनेकता में भी एकता लक्षित की जा सकती है। जापान, चीन, रूस, अमेरिका, इंग्लैंड और भारत देशों की राजनीति भले ही एक समान नहीं, किन्तु वहाँ के साहित्यकारों का मन एक-सा है। उनका आक्रोश, उनका व्यंग्य, उनकी पीड़ा और वेदना उनकी रचनाओं में समानता से पाई जाती है। लेकिन साहित्य की सामाजिक एकता तभी टिकाऊ बन सकती हैं, जब हम अपना दृष्टिकोण संकीर्णता के दायरे से निकालकर उदार दृष्टि का परिचय दें और साहित्य को उत्तरसंस्कृति के दीमक प्रभावों से बचाकर रखें। लेकिन पीड़ादायक तथ्य यह है कि सच्चे और निष्ठावान साहित्कार को शून्य बना देने का उद्योग भी बराबर बरकरार रहा है। कुछ वर्ष पहले नाइजीरिया के प्रख्यात साहित्यकार, पर्यावरणविद् एवं मानवाधिकार के हिमायती केन सारो वीवा तथा उसके आठ साथियों को नाइजीरिया के सैनिक शासन ने फाँसी पर लटका दिया। सारो वीवा पर आरोप लगाया गया कि उसने अपनी रचनाओं एवं वक्तव्यों के जरिए शेल कंपनी व नाइजीरिया के फौजी शासन के खिलाफ अपनी विद्रोहात्मक आवाज बुलंद की थी। फाँसी पर झूलने से पहले सारो वीवा के आखिरी शब्द थे- ''मैं नहीं रहूँगा, लेकिन संघर्ष जारी रहेगा।'' इसी संदर्भ में जरा पीछे मुड़कर देखें तो मानवीय आत्मा की अपराजेयता के प्रति आस्था जगाने वाले और सत्य की खातिर अडिग रहने वाले सुकरात. ईसा मसीह, मंसूर हल्लाज, सरमद, गुरु तेग बहादुर आदि विभूतियों को कट्टरपंथियों के अमानवीय कृत्यों और बर्बरता का शिकार होना पड़ा था।

विश्व साहित्य के रक्तरंजित कई पृष्ठ गवाह हैं कि जब भी किसी साहित्यकार ने आरोपित वर्जनाओं को चुनौती दी, पाशविकता का विरोध किया, धार्मिक उग्रवाद को बेनकाब किया और देश की सही व साफ पहचान कराने की चेष्टा की तो शासक वर्ग एवं कट्टरपंथियों ने सिद्धान्तवादिता और कानून के बल पर उसकी रचनाओं को प्रतिबंधित किया, जलाया तथा उसे मौत की उँगली पकड़ने तक के लिए मजबूर किया। तत्कालीन अपसंस्कृति के परिवेश में साहित्य का छिद्रान्वेषण जारी रहा; कानून ने इसे संदेह से देखा और धार्मिक सत्ता ने इसके प्रति कभी उदारता नहीं दिखाई। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और प्रेस की आजादी को रौंदा जाता रहा। इस संदर्भ में टोमस हार्डी का सच बहुतेरों को सहन नहीं था। एक बिशप ने तो हार्डी के उपन्यास 'ज्यूड द ऑब्सक्योर' को जला ही दिया । जेम्स जॉईस के उपन्यास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'यूलिसेस' (1922) को प्रकाशन के समय कटु विरोध का सामना करना पड़ा था। यद्यपि उपन्यास का केन्द्रीय विषय आधुनिकता था; फिर भी, तथाकथित अश्लीलता के आरोप स्वरूप यह उपन्यास इंग्लैंड में 1936 तक प्रतिबंधित रहा। लेकिन जब टी.एस. इलियट ने 'यूलिसेस' उपन्यास को आधुनिक युग की एक महत्त्वपूर्ण रचना घोषित करते हुए अपने 'द ईगोइस्ट' लेख में अमेरिका की सेंसरसिप पर तीखी टिप्पणी की तो न्यायाधीश वूल्जे ने 1933 में अपना लंबा, अर्थपूर्ण एवं विवेकपूर्ण निर्णय देते हुए 'यूलिसेस' को अश्लीलता के आरोप से बरी किया। काश ! प्रेमचंद के 'सोजेवतन' की जब्ती के समय, यदि किसी भारतीय विद्वान साहित्यकार ने इस लघु कृति के बारे में सही एवं निष्पक्ष प्रतिक्रिया जाहिर की होती तो शायद प्रेमचंद को हमीरपुर के कलेकटर से ये शब्द न सुनने पड़ते- "प्रेमचंद, तुम्हें अपना सौभाग्य मानना चाहिए कि तुम अंग्रेज सरकार की प्रजा हो। यदि यह मुगलकाल होता तो तुम्हारे दोनों हाथ कटवा दिए जाते।" जाहिर है कि तब भी भारतीय साहित्यकारों में कुछ जयचंद थे और आज भी उत्तरसंस्कृति की खुराक से पल्लवित कुछेक जयचंद-व्यक्तित्वों का साहित्य में बोलवाला है।

धर्म प्रधान देशों के संदर्भ में सलमान रुशदी की 'सेटेनिक वर्सेज' (1988) तथा तसलीमा नसरीन के 'लज्जा' (1933) उपन्यास को न केवल प्रतिबंध का शिकार होना पड़ा बल्कि इन दोनों रचनाकारों को मौत के फतवे भी जारी किए गए, जिनके आतंक और भय से वे मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अभी तक उभर नहीं पाए हैं। कट्टरवादी साम्प्रदायिक ताकतें वहाँ हैं तो साहित्य की दुनिया में वे अपने कुसंस्कृत एवं फरेबी रूप में यहाँ भी सक्रिय हैं। सवाल खड़ा है कि क्या साहित्यकार को समाज द्वारा सुरक्षण नहीं मिलना चाहिए? इसके बाद आता है यह अहम् सवाल कि उन्माद और जुनून कब तक साहित्यकार की संघर्ष चेतना को दंडित करता रहेगा? कितनी आसानी से इस सत्य को भुला दिया जाता है कि विचार न कभी मरता है, न उसे कैदी बनाया जा सकता है। कह देना होगा कि यदि धार्मिक वर्जनाओं का उदारीकरण होता है, सत्ता शक्ति न्याय की रक्षक बनती है, समाज के निर्णयों में साहित्यकार की सहभागिता रहती है और उत्तरसंस्कृति के सिंहासन पर सद्संस्कृति विराजमान होती है तो प्रतिबद्ध रचनाकार के अस्तित्व एवं उसकी रचनाधर्मिता को कोई खतरा नहीं होगा।

कोई जिरह कर सकता है कि साहित्यकारों एवं लेखकों को अभिप्रेरित प्रतिष्ठित, उत्साहित एवं स्थापित करने के लिए हर वर्ष अन्यान्य सम्मानों एवं पुरस्कारों से नवाजा भी तो जाता है। माना कि जब तक इन सम्मानों एवं पुरस्कारों की संख्या कम रही, पात्र व समर्पित साहित्यकारों को उनका हक मिलता रहा। लेकिन जब से इन सम्मानों एवं पुरस्कारों की गिनती में वृद्धि हुई है और सृजनात्मक शक्ति पर सत्ता शक्ति व उत्तरसंस्कृति का प्रभुत्व बढ़ा है, इन गौरवपूर्ण एवं वैभवशाली प्रतीकों पर स्थायी प्रश्नचिह्न लग गए हैं। योग्य एवं पात्र लेखक अपने हक की हत्या देखकर क्षुब्धता तथा आक्रोश से तड़प उठता है। यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि श्रीकान्त वर्मा पुरस्कार छत्तीसगढ़ के शायद ही किसी साहित्यकार को मिला हो। यही स्थिति भारतभूषण अग्रवाल पुरस्कार की भी है। कुछ समय पहले कला का 'शिखर सम्मान' बेन्द्रे को दे दिया गया, जबकि कला का एक नया स्कूल चलाने वाले उनके गुरु देवलालीकर अपने गाँव में ही भूख-प्यास से जूझते रहे ।

परन्तु पुरस्कार झपटन की स्तरहीन राजनीतिक क्रीड़ा से कोसों दूर रहने वाले रामविलास शर्मा, बालकृष्ण राव, अमृतलाल नागर और कृष्ण सोबती के नाम इसलिए उल्लेखनीय मिसाल हैं कि उन्होंने सम्मान और पुरस्कार के लिए अपने स्वाभिमान की बलि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं दी। यह बात अवश्य मन खट्टा करने वाली है कि हिन्दी भाषी राज्यों के पुरस्कार हिन्दीतर लेखकों को तो दिए जाते हैं, लेकिन हिन्दीतर राज्यों के पुरस्कार हिन्दी भाषी लेखकों की झोली में नहीं के बराबर गिरते हैं। भाषा के आधार पर लेखकों को तकसीम करना कोई उत्साहवर्धक नजरिया नहीं है। प्रसंगवश, 'काका हाथरसी पुरस्कार' केवल हास्य रचनाकारों को ही दिया जाता है। यहाँ प्रश्न पूछा जाता है कि क्या हास्य रचनाएँ ही श्रेष्ठ रचनाएँ हैं, अन्य रचनाएँ नहीं।

इसमें भी संदेह नहीं कि साहित्य के लिए नोबेल पुरस्कार को लेकर भी तरह-तरह के विवाद उभरते रहे हैं जबकि श्रेष्ठता का परम प्रेमी एल्फर्ड बी. नोबेल चाहता था किसी भी व्यक्ति की कार्य-उत्कृष्टता सारी दुनिया में फैले। 1896 में उसकी मृत्यु के समय उसके बैंक खाते में 9 मिलियन डॉलर राशि जमा थी। इस पर प्राप्त होने वाली ब्याज राशि को अपनी वसीयत में अनुबंधित करते हुए उसने लिखा था कि यह राशि हर वर्ष पुरस्कारों के रूप में उन महान व्यक्तियों को, बिना राष्ट्रीयता का भेदभाव किए, प्रदान की जाए जिन्होंने पूर्वगत वर्ष में मानवता की भलाई के लिए श्रेष्ठतम कार्य किया हो । स्पष्ट है कि उसकी इच्छा के तहत ही 1901 से लेकर आज तक प्रतिष्ठित साहित्यकारों, वैज्ञानिकों एवं शांति-निर्माताओं को नोबेल पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया है। लेकिन स्वीडन नोबेल कमेटी अन्यान्य विरोधों, विवादों एवं शिकायतों से भी बराबर घिरी रही है। काबिलेगौर है कि इंग्लैंड के प्रसिद्ध जैव रसायनज्ञ सर क्रिस्टोफर इंगोल्ड की मृत्यु पर शोक व्यक्त करते हुए जब वैज्ञानिकों ने शिकायती लहजे में कहा कि आधुनिक युग का सबसे महान जैव रसायनज्ञ नोबेल पुरस्कार जीत नहीं सका तो नोबेल कमेटी को अपने निर्णय पर गहरा दुःख पहुँचा था। आश्चर्य नहीं कि शांति पुरस्कारों में महात्मा गांधी को उनके जीवनकाल में नोबेल पुरस्कार न देने का सदमा आज तक नोबेल स्वीडन अकादमी को है। शायद इसी सदमे के विरेचनार्थ उसने नेल्सन मंडेला के रूप में परोक्ष रूप से गांधीवाद को पुरस्कृत किया है।

अंग्रेजी उपन्यासकार टॉमस हार्डी 1914 से लेकर 1927 तक नोबेल पुरस्कार के लिए नामांकित होता रहा लेकिन विशेषज्ञों ने हर बार उसका नाम नामंजूर किया। उन्हें भय था कि हार्डी भाग्यवाद का प्रबल समर्थक है और उसकी रचनाएँ अकीर्तिकर हैं। विज्ञान के क्षेत्र में लिनार्ड, पॉलिंग, शोकिली, शोलोखोव, पास्टरनाक और सखारोव जैसे व्यक्ति नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने के बाद बदमाशी पर उतरे। लिनार्ड ने तो आइनस्टाइन के सापेक्षता सिद्धान्त की कड़ी आलोचना की। उसने आइनस्टाइन को यहूदी तक कहा और उसने भौतिकी के सम्मेलनों में भी उसके खिलाफ कई निंदापूर्ण भाषण दिए और अप्रिय टिप्पणियाँ कीं। नोबेल पुरस्कारों के बारे में ऐसे कई प्रमाण मिलते हैं कि स्वीडन कमेटी ने प्रभावाधीन होकर अपने निर्णय बदले हैं और नतीजे के तौर पर पैने विरोधों एवं विवादों का शिकार भी हुई है। पाठकों का विरोध इस हद तक पहुँच गया कि उन्होंने राजनीति से प्रभावित नोबेल पुरस्कार से सम्मानित साहित्यकारों एवं वैज्ञानिकों को पढ़ना तो दूर उनके नामों को याद रखने की परवाह तक नहीं की। उन्होंने स्वीडन अकादमी से बदला लेने के लिए हेनरी जेम्स, जोसेफ कॉनरेड, फ्रांज काफ्का, ई.एम. फॉस्टर और ग्राहम ग्रीन की कृतियों को पढ़ना और खरीदना शुरू कर दिया। यह इसलिए कि नोबेल कमेटी ने दबाव में आकर इन योग्य व पात्र साहित्यकारों में से किसी को भी नोबेल पुरस्कार से सम्मानित नहीं किया था। ग्राहम ग्रीन पर तो चरित्रहीनता का दोष लगाकर उम्मीदवारों की सूची में से उसका नाम ही निकाल दिया था। हिटलर का भी यही सोचना था कि इन पुरस्कारों में निहित हितों का प्रभुत्व रहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसीलिए उसने दूसरे महायुद्ध के दौरान जर्मनी के सरायनज्ञ को नोबेल पुरस्कार लेने से मना कर दिया था। यह भी कि साहित्य के लिए 1933 का नोबेल पुरस्कार जीतने वाला इंवान बुनिन, रूसी साहित्कार मैक्सिम गोर्की के सामने कहीं नहीं लगता। सेमुअल बेकेर को 'मैलोन डाईज' कृति के लिए नोबेल पुरस्कार मिला, जिसके कई अवतरण बहुत ही घटिया किस्म के थे।

भारतीय साहित्य के संदर्भ में आन्दोलित करने वाला आज भी प्रश्न यह है कि रवीन्द्रनाथ टैगोर के बाद भारतीय साहित्यकारों के लिए नोबेल पुरस्कार के द्वार बंद क्यों हैं और नोबेल पुरस्कार चयन समिति द्वारा भारतीय साहित्यकारों की लगातार उपेक्षा क्यों की गई है? जबकि सिंगर, सालबेलो, मार्क ट्वेन, हेमिंग्वे, टॉनी मॉरिसन, शोयंका , बाल्काट, ऑक्टावियो पॉज और गुंटर ग्रास साहित्य सर्जकों की टक्कर के हमारे यहाँ भी साहित्यकार रहे हैं और आज भी हैं। क्या भारतीय भाषाओं के श्रेष्ठ एवं प्रतिभावान साहित्यकारों में नोबेल पुरस्कार चयन समिति को रवीन्द्रनाथ टैगोर के बाद आज तक एक भी ऐसा नाम नहीं मिला जो इस पुरस्कार के लिए पात्र हो। जबकि ऑक्टावियो पॉज ने बड़ी आश्वस्तता से कहा था- "भारतीय साहित्यकारों और कलाकारों से बहुत-सी आशाएँ हैं। इनमें कुछ तो ऐसे हैं, जिनका संकल्प उनके अपने माध्यम से व्यक्त होता है, दूसरों के माध्यम से नहीं।" जाहिर है कि पॉज का यह इशारा नोबेल पुरस्कार चयन समिति की ओर था कि भारतीय साहित्यकारों का मूल्यांकन निष्पक्षता एवं ईमानदारी से किया जाना चाहिए ।

एक अन्य कोण से देखा जाए तो भारतीय भाषाओं के जीवित साहित्यकारों की श्रेष्ठ कृतियों का अंग्रेजी भाषा या अन्य विदेशी भाषाओं में उत्तम किस्म का अनुवाद बहुत कम हुआ है और जो अनुवाद हुए भी हैं, वे रचनाकारों के निजी प्रयासों से ही हुए हैं। ये अनुवाद अन्तर्राष्ट्रीय अनुवाद गुणवत्ता की कसौटी पर कमजोर पड़ जाते हैं। यह सुखद है कि कुछ भारतीय साहित्यकारों ने अपनी कृतियों के अनुवाद कार्य में विदेशी विद्वान मित्रों का सहयोग एवं मार्गदर्शन लेना शुरू किया है। फिर भी, विष्णु प्रभाकर, गंगाप्रसाद विमल, केदारनाथ सिंह, महीप सिंह, नरेन्द्र मोहन, अमृता प्रीतम, नील पद्मनाभन आदि भारतीय साहित्य सर्जकों की श्रेष्ठ कृतियों के अंग्रेजी भाषा एवं अन्य विदेशी भाषाओं में उच्चस्तरीय अनुवाद होना जरूरी हैं। इससे भारतीय साहित्य प्रतिभाओं का विदेशी विद्वानों के साथ अन्तर्राष्ट्रीय साक्षात्कार होगा।

यह जानकर भी पीड़ा होती है कि उत्तरसंस्कृति की कई प्रवृतियों ने इधर के आलोचकों, विशेषकर समीक्षा शौकीनों को अपनी लपेट में ले लिया है। प्रायः देखा गया है कि कृति की राह से गुजरे बगैर भूमिका एवं फ्लैप पर टिमटिमाती टिप्पणियों को पढ़कर समीक्षा लिख दी जाती है, जिसमें कई बार आलोचना, समीक्षा, मूल्यांकन और पुस्तक परिचय चारों चीजों का सम्मिश्रण रहता है। आलोचना की धुंध में मूल्यांकन को ही समीक्षा मान लेना और कृति की राह से गुजरने से कतराना समीक्षा के साथ एक खिलवाड़ है। जिन लोगों को समीक्षा के सिद्धान्तों का पता नहीं है वे अपने चहेतों को उठाने और अप्रियों को गिराने के उद्देश्य से समीक्षा करने लगते हैं तथा जो अच्छे समीक्षक हैं, उनके पास समीक्षा के लिए समय नहीं है। हंगेरियन कवि एवं आलोचक मिकलॉस गाइम्स ने आलोचना के महत्व को बताते हुए कहा है- "किसी देश का परिचय उसके साहित्य का स्तर एवं उसकी साहित्य की आलोचना से मिलता है।" तात्पर्य यह है कि आलोचना साहित्य का स्तर एवं उसकी गुणवत्ता का निर्धारण करती है। स्पष्ट है कि साहित्य की गुणवत्ता समाज पर और समाज की गुणवत्ता देश पर निर्भर करती है। देश स्वस्थ और साफ-सुथरा है तो समाज निश्चय ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुणात्मक होगा और फिर उसका साहित्य भी स्तरीय होगा। लेकिन उत्तरसंस्कृति ने देश, समाज और साहित्य को कटा-फटा और मैला आकार देकर उसके भावी स्वास्थ्य की संभावनाओं के सामने मारक चुनौतियों को खड़ा कर दिया है।

निस्संदेह, आलोचना का कार्य साहित्य को झूठ बोलने से रोकना है। कोई बहस कर सकता है कि साहित्यिक झूठ को रोकना संभव नहीं है। पर आलोचना ने साहित्यिक झूठ को सत्य के रूप में स्थापित होने से रोका भी है, ऐसी मिसालें भी जिंदा हैं। इस संदर्भ में अरस्तू मैथ्यू आरनोल्ड, टी.एस. इलियट, स्टीफन स्पेंडर, आई.ए. रिचर्ड, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, रामविलास शर्मा, नामवर सिंह आदि आलोचकों ने स्वस्थ एवं सद्साहित्य का ही शंखनाद किया है। इस पर जोर देने की भी जरूरत नहीं कि समीक्षा या आलोचना सदैव रचनापेक्षी होती है और इसकी प्राथमिक प्रतिबद्धता रचना और उसके भीतरी विश्लेषण के प्रति है, न कि किसी व्यक्ति और विचारधारा के प्रति। समीक्षा के मोर्चे पर जिस वस्तु से सीधा साक्षात्कार होता है, वह है कृति और उसकी भाषिक संरचना। रचना के प्रति पारगामी समझ पैदा करने के लिए सर्जनात्मक भाषा अथवा रचना के सम्पूर्ण तत्व का विश्लेषण अनिवार्य है। लेकिन आज की समीक्षा में वस्तु और रूप की दृष्टि से मूल्यांकन का अधिक प्रचलन है। जबकि रचनाकार की रचनात्मक सत्ता को सदैव ललकारते रहना समीक्षक का चेतना धर्म है। समीक्षक की जो अन्तर्दृष्टि होती है, वह रचनाकार की अन्तर्दृष्टि की खोज की दृष्टि है। समीक्षक रचनाकार को गुम होने देना नहीं चाहता, इसलिए वह उसे निरंतर ढूँढ़ता-खोजता रहता है। वह रचना के प्रकार से लड़ता है और रचना के भीतर से आत्मा निकाल लाता है। जिन क्षणों में रचनाकार जीता है, समीक्षक उन्हीं क्षणों को एकत्रित कर युग में बदल देता है। लेकिन उत्तरसंस्कृति में रंगे इधर के समीक्षक अपने अहं से रचनाकार को रौंदने का प्रयास करते हैं और उनकी यह टकराहट मूल्यांकन का समूचा गणित बिगाड़ देती है। रचना के स्तर पर जो बौद्धिक टकराव होना चाहिए था, वह व्यक्तिगत फिकरेबाजी या समीक्षात्मक गाली में बदल जाता है ।

उपर्युक्त आलोक बिन्दुओं का निष्कर्ष यह आलोकित करता है कि उत्तरसंस्कृति एवं वैश्वीकरण के झंझावातों व बदरंग प्रभावों से मुक्त होने के लिए भारतीय संस्कृति एवं साहित्य की आत्मा की ओर लौटना बेहद जरूरी है। साहित्य मानवीय चेतना का प्रतिफल है, तो निश्चित रूप से यह चेतना मनुष्य के सामाजिक और सांस्कृतिक अस्तित्व से ही निर्धारित होती है। हमारी रचनात्मक कल्पना भी हमारे सामाजिक अस्तित्व पर निर्भर करती है। भारतीय संस्कृति का कार्य मनुष्य में सामाजिक चेतना और सामाजिक नैतिकता का निर्माण करना रहा है। अतः स्वार्थग्रस्त मानवीय चेतना और सुविधाभोगी मूल्यों के अंधेरे में भारतीय संस्कृति ही वैकल्पिक दृष्टि के रूप में आलोक-स्तंभ है। उत्तरसंस्कृति मात्र मूल्य विरोधी अवधारणा है, अन्तर्राष्ट्रीय हवा है, प्रभाव है। बाजारवाद का प्रभाव भी हमारी संस्कृति को निगल नहीं सकता है। उत्तरसंस्कृति तो पेड़ पर जड़हीन बेल की तरह है, जबकि भारतीय संस्कृति की जड़ें भारतीय मन में हैं। उत्तरसंस्कृति एक चरण है। चिंता का विषय जरूर है, लेकिन डरने की बात नहीं है।

130976

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निवेदन

परिषद की पत्रिकाओं, 'अनुवाद भारती', 'शोध भारती' एवं 'हास्य-व्यंग्य भारती' में प्रकाशनार्थ आपके संबंधित विषय के लेख / कविताएँ / अनूदित रचनाएँ सादर आमंत्रित हैं ।

- कृपया अप्रकाशित, स्तरीय और मौलिक रचना ही भेजें ।
- रचना कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित / टंकित रूप में हो ।
- प्रेषित रचना की प्रति अपने पास अवश्य रखें । केवल स्वीकृत रचना की ही सूचना देना संभव है ।
- लेख आदि प्रकाशित करने की एवज में परिषद / पत्रिका मानदेय देने की स्थिति में नहीं है ।
- पत्रिकाओं में संबंधित विषय की नई प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा भी प्रकाशित की जाती है । समीक्षा प्रकाशित कराने हेतु प्रकाशित पुस्तक की दो प्रतियाँ भेजना आवश्यक है ।
- परिषद के कार्यालय के पते पर अधिक जानकारी के लिए लिखें ।

विशुद्ध साहित्यिक मनोरंजन से आत्मविभोर होने हेतु
नियमित रूप से पढ़ें
अखिल भारतीय हिंदी-भाषा-साहित्य शोध परिषद की
हिंदी हास्य-व्यंग्य विधा की एकमात्र एवं अनूठी
नियमित त्रैमासिक पत्रिका

हास्य-व्यंग्य भारती

सदस्यता शुल्क : वार्षिक रु. 60-00, द्विवार्षिक : रु. 100-00
अधिक जानकारी के लिए लिखें :
डॉ. राम गोपाल सिंह, सम्पादक : हास्य व्यंग्य भारती
अथवा
अध्यक्ष, अखिल भारतीय हिंदी भाषा-साहित्य-शोध परिषद
बी-12, पूर्ण पुरूषोत्तम सोसाइटी, भाग-2,
राणीप, अहमदाबाद-382480. **दूरभाष 7520826**

अखिल भारतीय अनुवाद परिषद, अहमदाबाद की
नियमित त्रैमासिक पत्रिका

अनुवाद भारती

अनुवाद सिद्धांत एवं व्यवहार की अनूठी पत्रिका
अधिक जानकारी के लिए लिखें :
डॉ. राम गोपाल सिंह, सम्पादक : 'अनुवाद भारती' एवं 'शोध भारती'
अथवा अध्यक्ष, अखिल भारतीय अनुवाद परिषद,
बी-12, पूर्ण पुरुषोत्तम सोसाइटी, भाग-2,
राणीप, अहमदाबाद-382480. दूरभाष : 7520826

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri